मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २००७ से २०१३ तक २५,२५०
सं० २०१५ चौथा संस्करण ५,०००
कुल ३०,२५०

मूल्य ।=) छः आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

परिचय

इस पुस्तिकामें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित 'तत्त्व-चिन्तामणि भाग ७' में प्रकाशित भगवान् श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत, श्रीशत्रुघ्न तथा भक्त हनुमान्‌के चरित्रोंका संग्रह है; इनके साथ 'संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्क' में प्रकाशित 'श्रीसीताजीका आदर्श जीवन' भी जोड़ दिया गया है। इनमेंसे श्रीहनुमान्‌के जीवन-चरित्रको छोड़कर अन्य सभी चरित्र केवल वाल्मीकीय रामायणके ही आधारपर लिखे हुए हैं। केवल श्रीहनुमान्‌जीका चरित्र वाल्मीकीय रामायण, रामचरितमानस, पद्मपुराण आदि ग्रन्थोंके आधारपर विस्तारसे चित्रित किया गया है।

रामायणके इन छहों पात्रोंके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं सभीके लिये परम आदर्श हैं। अतएव इनके पावन चरित्रों-का मनन एवं अनुकरण करके अपने जीवनको शुद्ध और सफल बनानेके लिये यह पुस्तिका बड़ी ही उपादेय है।

श्रीहरिः

विषय-सूची

पृष्ठ

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

आदर्श गुण

रघुकुलभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादारक्षक आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ—यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा थे। वे धर्मकी रक्षा और लोकोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। किन्तु उन्होंने सदा सबके सामने अपनेको एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध करनेकी चेष्टा की। उनके आदर्श लीला-चरित्रोंके पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें अत्यन्त पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कर्म अनुकरण करने योग्य है। श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र थे। सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा-संरक्षण, एकपत्नीव्रत, प्रजा-रञ्जकता, ब्राह्मण-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मैत्री, शरणागत-वत्सलता, सरलता, व्यवहार-कुशलता, प्रतिज्ञा-पालन, साधु-रक्षण, दुष्ट-दलन, निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्मपरायणता, पवित्रता आदि-आदि सभी गुणोंका मर्यादा-

पुरुषोत्तम श्रीराममें पूर्ण विकास हुआ था। संसारमें इतने महान् गुण एक व्यक्तिमें कहीं नहीं पाये जाते। वाल्मीकीय रामायणके बाल और अयोध्याकाण्डोंके आदिमें भगवान् रामके गुणोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता कहीं देखनेमें ही नहीं आती। उनकी लीलाके समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था, जो श्रीरामके प्रेमपूर्ण मधुर बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो।

कैकेयीका रामके साथ अप्रिय एवं कठोर बर्ताव भगवान्‌की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोक-हितार्थ हुआ था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे; क्योंकि जिस समय मन्थराने रानी कैकेयीको रामके विरुद्ध उकसानेकी चेष्टा की है, उस समय स्वयं कैकेयीने ही उसे यह उत्तर दिया है—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥
भ्रातृन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥

× × ×

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं तथा भ्रातृंस्तु राघवः॥

(वा० रा० २। ८। १४-१५, १८-१९)

'कुब्जे ! राम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके बड़े पुत्र हैं; अतः युवराज होनेका अधिकार उन्हींको है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और नौकरोंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेककी बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है ? मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही—बल्कि उससे भी बढ़कर राम हैं ! वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं। यदि रामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको ही मिला समझ; क्योंकि रामचन्द्र अपने भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं।' कैसा सुन्दर वात्सल्य-प्रेम है ! श्रीरामपर कैकेयीका कितना प्रेम, विश्वास और भरोसा था। इससे यह स्पष्ट समझमें आ जाता है कि कैकेयीका कठोर बर्ताव उसके स्वभावसे नहीं हुआ, भगवदिच्छासे ही हुआ था।

श्रीरामकी मातृ-भक्ति

श्रीरामकी मातृ-भक्ति बड़ी ही आदर्श थी। उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है, अतः यहाँ संकेतमात्र ही लिखा जाता है—

माता कौसल्या तथा अन्य माताओंकी तो बात ही क्या है, माता कैकेयीके द्वारा कठोर-से-कठोर व्यवहार किया जानेपर भी उसके प्रति श्रीरामका व्यवहार तो सदा भक्ति और सम्मानसे पूर्ण ही रहा। माता कौसल्याके महलसे लौटते समय कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे उन्होंने स्वयं कहा है—

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति ।
माता नः सा यथा न स्यात् सविशङ्का तथा कुरु ॥
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥

न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्॥
(वा० रा० २ । २२ । ६-८)

'लक्ष्मण! मेरे राज्याभिषेकके कारण जिसके चित्तमें सन्ताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकेयीको जिससे मेरे ऊपर किसी तरहका सन्देह न हो, वही काम करो। उसके मनमें सन्देहके कारण उत्पन्न हुए दुःखकी मैं एक मुहूर्तके लिये भी उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने कभी जान-बूझकर या अनजानमें माताओं या पिताजीका कभी थोड़ा भी अप्रिय कार्य किया हो—ऐसा याद नहीं पड़ता।'

इसके सिवा और भी बहुत-से उदाहरण श्रीरामकी मातृ-भक्तिके मिलते हैं। चित्रकूटसे लौटते समय भरतसे भी रामने कहा था कि 'भाई भरत! माता कैकेयीने तुम्हारे लिये कामनासे या राज्य-लोभसे यह जो कुछ किया है, उसको मनमें न लाना। उनके साथ सदा वैसा ही वर्ताव करना, जैसा अपनी पूजनीया माताके साथ करना चाहिये।' उसी समय शत्रुघ्नसे भी कहा है—'भाई! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम कभी माता कैकेयीपर क्रोध न करना, सदा उनकी सेवा ही करते रहना।' वनमें रहते समय एक वार लक्ष्मणने कैकेयीकी निन्दा की, उसपर आपने यही कहा—'भाई! माता कैकेयीकी तुमको निन्दा नहीं करनी चाहिये'—इत्यादि। इससे यह पता चलता है कि श्रीरामकी अपनी अन्य माताओंके प्रति कैसी श्रद्धा और भक्ति रही होगी। राजा दशरथकी अन्य रानियोंने उनके वन जाते समय विलाप करते हुए कहा था—

कृत्येष्वचोदितः पित्रा सर्वस्यान्तःपुरस्य च ।
गतिश्च शरणं चासीत् स रामोऽद्य प्रवत्स्यति ॥
कौसल्यायां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा ।
तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघवः ॥

(वा० रा० २ । २० । २-३)

'जो राम किसी काम-काजके विषयमें पिताके कुछ न कहनेपर भी सारे अन्तःपुरकी गति और आश्रय थे, वे ही आज वनमें जा रहे हैं । वे जन्मसे ही जैसी सावधानीसे अपनी माता कौसल्याके साथ बर्ताव करते थे, उसी प्रकार हम सबके साथ भी करते थे ।'

इससे बढ़कर श्रीरामकी मातृ-भक्तिका प्रमाण और क्या होगा ।

पितृ-भक्ति

इसी प्रकार श्रीरामकी पितृ-भक्ति भी बड़ी अद्भुत थी । रामायण पढ़नेवालोंसे यह बात छिपी नहीं है कि पिताका आज्ञापालन करनेके लिये श्रीरामके मनमें कितना उत्साह, साहस और दृढ़ निश्चय था । माता कैकेयीसे बातचीत करते समय श्रीराम कहते हैं—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ॥

(वा० रा० २ । १८ । २८-२९)

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥

(वा० रा० २ । १९ । २२)

'मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष-का पान कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ; क्योंकि

जैसी पिताकी सेवा और उनकी आज्ञाका पालन करना है, इससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्म नहीं है।'

इसी तरहके वहाँ और भी बहुत-से वचन मिलते हैं। उसके बाद माता कौसल्यासे भी उन्होंने कहा है—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥

(वा० रा० २। २१। ३०)

'मैं चरणोंमें सिर रखकर आपसे प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। मुझमें पिताके वचन टालनेकी शक्ति नहीं है। अतः मैं वनको ही जाना चाहता हूँ।'

इसके सिवा लक्ष्मण, भरत और ऋषि-मुनियोंसे बात करते समय भी रामने पितृ-भक्तिके विषयमें बहुत कुछ कहा है। श्रीरामचन्द्रके बालचरित्रका संक्षेपमें वर्णन करते हुए भी यह बात कही गयी है कि श्रीराम सदा अपने पिताकी सेवामें लगे रहते थे।

एकपत्नीव्रत

श्रीरामका एकपत्नीव्रत भी बड़ा ही आदर्श था। श्रीरामने स्वप्नमें भी कभी श्रीजानकीजीके सिवा दूसरी स्त्रीका वरण नहीं किया। सीताको वनवास देनेके बाद यज्ञमें स्त्रीकी आवश्यकता होनेपर भी उन्होंने सीताकी ही स्वर्णमयी मूर्तिसे काम चलाया। यदि वे चाहते तो कम-से-कम उस समय तो दूसरा विवाह कर ही सकते थे। उससे संसारमें भी उनकी कोई अपकीर्ति नहीं होती। परंतु भगवान् तो मर्यादापुरुषोत्तम ठहरे। उनको तो यह बात चरितार्थ करके दिखानी थी कि जिस प्रकार स्त्रीके लिये पातिव्रत्यका विधान

है उसी तरह पुरुषके लिये भी एकपत्नीव्रत परमावश्यक है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध भोग भोगनेके लिये नहीं, अपितु धर्माचरणके लिये है।

भगवान् श्रीरामका सीताके साथ कितना प्रेम था इसका कुछ दिग्दर्शन सीता-हरणके बादका प्रसङ्ग पढ़नेसे हो सकता है। श्रीराम परम वीर, धीर और सहिष्णु होते हुए भी उस समय एक साधारण विरहोन्मत्त पागलकी भाँति पशु-पक्षी, वृक्ष-लता और पर्वतोंसे सीता-का पता पूछते और नाना प्रकारके विलाप करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें भटकते फिरते हैं। कहीं-कहीं तो शोकसे विह्वल और मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं एवं 'हा सीते ! हा सीते !' पुकार उठते हैं। उस समयका वर्णन बड़ा ही करुणापूर्ण और हृदयविदारक है।

भ्रातृ-प्रेम

श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय था। लड़कपनसे ही श्रीराम अपने भाइयोंके साथ बड़ा प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। चारों भाई एक साथ ही घोड़ोंपर चढ़कर विचरण किया करते थे। रामचन्द्रजीको जो भी कोई उत्तम भोजन या वस्तु मिलती थी, उसे वे पहले अपने भाइयोंको देकर पीछे स्वयं खाते या उपयोगमें लाते थे। यद्यपि श्रीरामका सभी भाइयोंके साथ समान भावसे ही पूर्ण प्रेम था, उनके मनमें कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मणका श्रीरामके प्रति विशेष स्नेह था। वे थोड़ी देरके लिये भी श्रीरामसे अलग रहना नहीं चाहते थे। श्रीरामका वियोग उनके लिये असह्य था, इसी कारण विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये भी वे श्रीरामके साथ ही वनमें गये। वहाँ राक्षसों-का विनाश करके दोनों भाई जनकपुरमें पहुँचे। धनुषभङ्ग हुआ।

तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई और चारों भाइयोंका विवाह साथ-साथ ही हुआ। विवाहके बाद अयोध्यामें आकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहे।

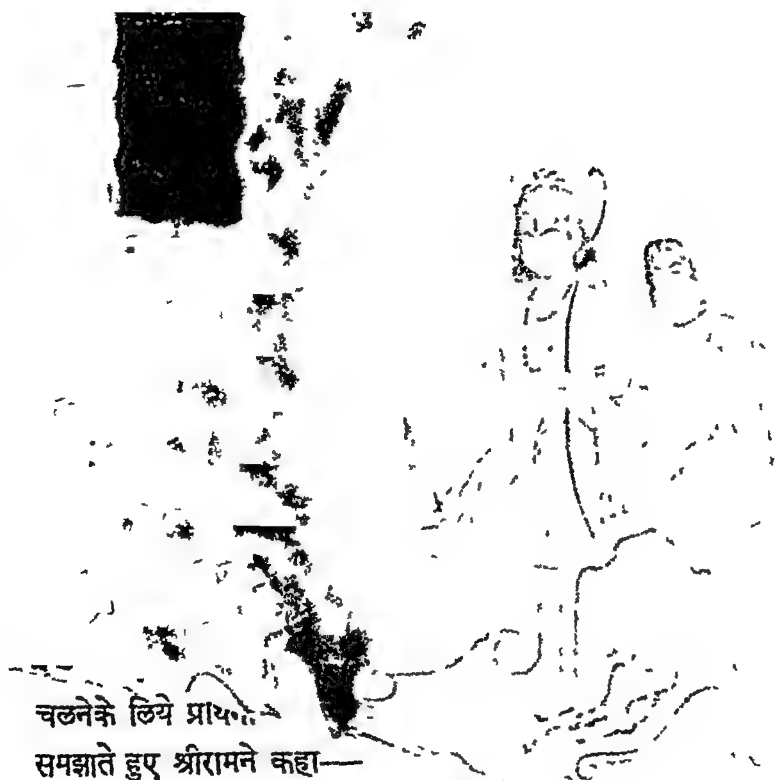
कुछ दिनोंके बाद अपने मामाके साथ भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण पिताके आज्ञानुसार प्रजाका कार्य करते रहे। श्रीरामके प्रेमभरे बर्तावसे, उनके गुण और स्वभावसे सभी नगर-निवासी और बाहर रहनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोंके मनुष्य मुग्ध हो गये। फिर राजा दशरथने मुनि वसिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मत्तिसे श्रीरामके राज्याभिषेकका निश्चय किया। राजा दशरथजीके मुखसे अपने राज्याभिषेककी बात सुनकर श्रीराम माता कौसल्याके महलमें आये। माता सुमित्रा और भाई लक्ष्मण भी वहीं थे। उस समय श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥

(वा० रा० २। ४। ४३-४४)

'लक्ष्मण! मेरे तुम साथ इस पृथ्वीका शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो। यह राज्यलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। सुमित्रानन्दन! तुम मनोवाञ्छित भोग और राज्य-फलका उपभोग करो। मैं जीवन और राज्य तेरे लिये ही चाहता हूँ।'

इसके बाद इस लीला-नाटकका पट बदल गया। माता कैकेयीके इच्छानुसार राज्याभिषेक वन-गमनके रूपमें परिणत हो



चलनेके लिये प्राय॰…
समझाते हुए श्रीरामने कहा—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥

(वा० रा० २ । ३१ । १०)

'लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म-परायण, धीर और सदा

सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो। मुझे प्राणोंके समान प्रिय, मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक और सखा हो।'

बहुत समझानेपर भी जब लक्ष्मणने अपना प्रेमाग्रह नहीं छोड़ा, तब भगवान्‌ने उनको संतुष्ट करनेके लिये अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। वनमें रहते समय भी श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारसे लक्ष्मण और सीताको सुख पहुँचाने तथा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा किया करते थे।

भरतके सेनासहित चित्रकूट आनेका समाचार पाकर जब श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मण क्षुब्ध होकर भरतके प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे॥
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः॥

(वा० रा० २। ९७। ५-६, ८, ११)

'लक्ष्मण! मैं सचाईसे अपने आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं राज्यको भी भाइयोंकी भोग्य-सामग्री और उनके सुखके लिये ही चाहता हूँ। तथा मेरे विनयी

भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वनमें आनेकी बात कानमें पड़ते ही भरतका हृदय स्नेहसे भर गया है, शोकसे उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं; अतः वह मुझे देखनेके लिये आ रहा है। उसके आनेका कोई दूसरा कारण नहीं है।'

इसके सिवा वहाँ यह भी कहा है कि 'भरत मनसे भी मेरे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यदि तुम्हें राज्यकी इच्छा है तो मैं भरतसे कहकर दिला दूँ।'

लक्ष्मणका भरतके प्रति जो सन्देह था, वह उपर्युक्त बातें सुनते ही नष्ट हो गया।

उसके बाद जब भरत आश्रममें पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लोट गये, तब श्रीरामने उनको देखा। अपने हाथोंसे उठाकर भरतका हृदयसे आलिङ्गन किया। उनको गोदमें बैठाकर और उनका सिर सूँघकर आदरपूर्वक सब समाचार पूछे और कहा—'भाई तुम! चीर और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतने श्रीरामको अयोध्या लौटानेकी बहुत चेष्टा की। भरत तथा रामके प्रेम और बर्तावको देखकर सारा समाज चकित हो गया। अन्तमें जब भरतने यह बात समझ ली कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, तब भरतने श्रीरामसे उनकी पादुकाएँ माँगीं। भरतकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीरामने अपनी पादुका देकर भरतको विदा कर दिया। वे उन पादुकाओंको आदरपूर्वक सिरपर धारण करके अयोध्या लौट आये। उन पादुकाओंका राज्याभिषेक करके उनके

आज्ञानुसार राज्यका शासन करने लगे और स्वयं श्रीरामकी ही भाँति मुनिवेष धारण करके नन्दिग्राममें रहे।

उसके बाद सीता-हरण हुआ। लङ्कापर चढ़ाई की गयी। रावणके साथ भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ एक दिन रावणके शक्ति-बाणसे लक्ष्मणके मूर्छित हो जानेपर श्रीरामने जैसा विलाप-लीला की, उससे छोटे भाई लक्ष्मणपर उनका कितना प्रेम था, इसका पता चलता है। वहाँ श्रीरामने कहा है—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥

(वा० रा० ६। १०१। १२-१३)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोकको जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुयायी रहा है, हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इसे इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

जो भाई अपने लिये सब कुछ छोड़कर मरनेको और सब तरहका कष्ट सहनेको तैयार हो उसके लिये चिन्ता और विलाप करना तो उचित ही है; परन्तु श्रीरामने तो इस प्रसङ्गमें विलापकी पराकाष्ठा दिखाकर भ्रातृ-प्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनुमान्‌जीद्वारा संजीवनी-बूटी मँगवाकर सुषेणने लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। युद्धमें रावण मारा गया। लंकापर विजय हो

गयी। भगवान् राम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामको बड़े आदर और प्रेमसे विनयपूर्वक कुछ दिन रुकनेके लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया—

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥

(वा० रा० ६। १२१। १८-१९)

'राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ—ऐसा कदापि सम्भव नहीं; परंतु मेरा मन उस भाई भरतसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है। जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटा ले जानेके लिये सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनोंको स्वीकार नहीं किया था [उस प्राणप्यारे भाई भरतसे मिलनेमें मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ ?]'—इत्यादि।

इसके बाद विमानमें बैठकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब मित्रोंके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी भरतसे मिलते समय उन्होंने अद्भुत भ्रातृ-प्रेम दिखलाया है।

राज्य करते समय भी श्रीराम हर एक कार्यमें अपने भाइयों-का परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकारसे उनको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे।

एक समय लवणासुरके अत्याचारोंसे घबड़ाये हुए ऋषियोंने उसे मारनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान्‌ने सभामें प्रश्न किया कि 'लवणासुरको कौन मारेगा? किसके जिम्मे यह काम रक्खा

जाय ?' तुरंत ही भरतने उसे मारनेके लिये उत्साह प्रकट किया। इसपर शत्रुघ्नने कहा कि 'भरतजीने तो और भी बहुत-से काम किये हैं, आपके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन किये हैं। फिर भरतजी बड़े भी हैं। मुझ सेवकके रहते हुए यह परिश्रम इनको नहीं देना चाहिये। इस कार्यके लिये तो मुझे ही आज्ञा मिलनी चाहिये।' तब श्रीरामजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि 'वहाँका राज्य भी तुम्हींको भोगना पड़ेगा, मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्नको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बहुत पश्चात्ताप किया। परन्तु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार वचनोंमें बाँधकर उनकी इच्छा न रहनेपर भी छोटे भाईको राज्य-सुख देना राम-सरीखे बड़े भाईका ही काम था।

इसके बाद प्रतिज्ञामें बँध जानेके कारण जब भाई लक्ष्मणका त्याग करना पड़ा, उस समय श्रीरामके लिये लक्ष्मणका वियोग असह्य हो गया। वहाँपर कविने कहा है—

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः।
पुरोधसो मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत्॥
अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्॥
प्रवेशयत संभारान् मा भूत् कालात्ययो यथा।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम्॥

(वा० रा० ७। १०७। १-३)

'लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख और शोकमें निमग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और शास्त्रज्ञोंको बुलाकर उनसे कहने

लगे—'मैं आज ही धर्मपर प्रेम रखनेवाले वीर भरतका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक करूँगा और उसके बाद वनमें जाऊँगा। शीघ्र ही समस्त सामग्रियाँ इकट्ठी की जायँ। देरी न हो; क्योंकि मैं आज ही जिस जगह लक्ष्मण गया है, वहाँ जाना चाहता हूँ।'

इसपर भरतने राज्यकी निन्दा करते हुए कहा—'मैं आपके बिना पृथ्वीका राज्य तो क्या, कुछ भी नहीं चाहता; अतः मुझे भी साथ ही चलनेकी आज्ञा दीजिये।' इसके बाद भरतके कथनानुसार शत्रुघ्नको भी मथुरासे बुलाया गया और मनुष्य-लीलाका नाटक समाप्त करके अपने भाइयोंसहित श्रीराम परमधाम पधार गये।

श्रीरामके भ्रातृ-प्रेमका यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। भाइयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरतके राज्याभिषेकके प्रस्तावसे परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाईकी माता कैकेयीपर पहलेकी भाँति ही भक्ति करना, मुक्तकण्ठसे भरतका गुण-गान करना, भरतपर शङ्का और क्रोध करनेपर लक्ष्मणको समझाना, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर प्राणत्याग करनेके लिये तैयार हो जाना, समय-समयपर भाइयोंको पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर प्रेम करना, शत्रुघ्नसे जबर्दस्ती राज्य करवाना, लक्ष्मणके वियोगको न सहकर परमधाममें पधार जाना—इत्यादि श्रीरामके आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको यथायोग्य शिक्षा लेनी चाहिये।

सख्य-प्रेम

श्रीरामका अपने मित्रोंके साथ भी अतुलनीय प्रेमका बर्ताव था। वे अपने मित्रोंके लिये जो कुछ भी करते, उसे कुछ नहीं समझते थे;

परन्तु मित्रोंके छोटे-से-छोटे कार्यकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। इसका एक छोटा-सा उदाहरण यहाँ लिखा जाता है। अयोध्यामें भगवान्‌का राज्याभिषेक होनेके बाद बंदरोंको विदा करते समय मुख्य-मुख्य बंदरोंको अपने पास बुलाकर प्रेमभरी दृष्टिसे देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी बड़ी सुन्दर और मधुर वाणीमें कहने लगे—

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा ॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः ।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः ॥

(वा० रा० ७ । ३९ । २३-२४)

'वनवासी वानरो! आपलोग मेरे मित्र हैं, भाई हैं तथा शरीर हैं। एवं आपलोगोंने मुझे सङ्कटसे उबारा है; अतः आप-सरीखे श्रेष्ठ मित्रोंके साथ राजा सुग्रीव धन्य हैं।' इसके सिवा और भी बहुत जगह श्रीरामने अपने मित्रोंके साथ प्रेमका भाव दिखाया है। सुग्रीवादि मित्रोंने भी भगवान्‌के सख्य-प्रेमकी वारंवार प्रशंसा की है। वे उनके वर्तावसे इतने मुग्ध रहते थे कि उनको धन, जन और भोगोंकी स्मृति भी नहीं होती थी। वे हर समय श्रीरामचन्द्रके लिये अपना प्राण न्योछावर करनेको प्रस्तुत रहते थे। श्रीराम और उनके मित्र धन्य हैं! मित्रता हो तो ऐसी हो।

शरणागतवत्सलता

यों तो श्रीरामकी शरणागतवत्सलताका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें स्थान-स्थानपर आया है; किन्तु जिस समय रावणसे अपमानित होकर विभीषण भगवान् रामकी शरणमें आया है, वह प्रसङ्ग तो भक्तोंके हृदयमें उत्साह और आनन्दकी लहरें उत्पन्न कर देता है।

धर्मयुक्त और न्यायसङ्गत बात कहनेपर भी जब रावणने विभीषणकी बात नहीं मानी, बल्कि भरी सभामें उसका अपमान कर दिया तब विभीषण वहाँसे निराश और दुखी होकर श्रीरामकी शरणमें आया। उसे आकाश-मार्गसे आते देखकर सुग्रीवने सब वानरोंको सावधान होनेके लिये कहा। इतनेमें ही विभीषणने वहाँ आकर आकाशमें ही खड़े-खड़े पुकार लगायी कि 'मैं दुरात्मा पापी रावणका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैं रावणसे अपमानित होकर भगवान् श्रीरामकी शरणमें आया हूँ। आपलोग समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दें।'

यह सुनकर सुग्रीव तुरंत ही भगवान् रामके पास गये और राक्षस-स्वभावका वर्णन कर श्रीरामको सावधान करते हुए रावणके भाई विभीषणके आनेकी सूचना दी। साथ ही यह भी कहा कि अच्छी तरह परीक्षा करके, आगे-पीछेकी बात सोचकर जैसा उचित समझें, वैसा करें।' इसी प्रकार वहाँ बैठे हुए दूसरे बंदरोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी। सभीने विभीषणपर सन्देह प्रकट किया, पर श्रीहनुमान्‌जीने बड़ी नम्रताके साथ बहुत-सी युक्तियोंसे विभीषणको निर्दोष और सचमुच शरणागत समझनेकी सलाह दी। इस प्रकार सबकी बातें सुननेके अनन्तर भगवान् श्रीरामने कहा—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥
(वा० रा० ६। १८। ३)

'मित्रभावसे आये हुए विभीषणका मैं कभी त्याग नहीं कर सकता। यदि उसमें कोई दोष हो तो भी उसे आश्रय देना सज्जनोंके

लिये निन्दित नहीं है।' इसपर भी सुग्रीवको संतोष नहीं हुआ। उसने शङ्का और भय उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी बातें कहीं। तब श्रीरामने सुग्रीवको फिर समझाया—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥
× × ×
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥
× × ×
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥
(वा० रा० ६। १८। २३, २७, ३३-३४)

"वानरगणाधीश! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीभरके उन पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षसोंको अंगुलीके अग्रभागसे ही मार सकता हूँ [अतः डरनेकी कोई बात नहीं है]। परंतप! यदि कोई शत्रु भी हाथ जोड़कर दीनभावसे शरणमें आकर अभय-याचना करे तो दया-धर्मका पालन करनेके लिये उसे नहीं मारना चाहिये। मेरा तो यह विरद है कि जो एक बार भी 'मैं आपका हूँ' यों कहता हुआ शरणमें आकर मुझसे रक्षा चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! [उपर्युक्त नीतिके अनुसार]

मैंने इसे अभय दे दिया; अतः तुम इसे ले आओ—चाहे यह विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो !"

बस, फिर क्या था। भगवान्‌की बात सुनकर सब मुग्ध हो गये और भगवान्‌के आज्ञानुसार तुरंत ही विभीषणको ले आये। विभीषण अपने मन्त्रियोंसहित आकर श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—'भगवन् ! मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ। अब मेरा राज्य, सुख और जीवन—सब कुछ आपके ही अधीन है !' इसके बाद श्रीरामने प्रेमभरी दृष्टि और वाणीसे उसे धैर्य दिया और लक्ष्मणसे समुद्रका जल मँगाकर उसका वहीं लङ्काके राज्यपर अभिषेक कर दिया।

कृतज्ञता

वास्तवमें देखा जाय तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर थे। उनकी अपार शक्ति थी, वे स्वयं सब कुछ कर सकते थे और करते थे; उनका कोई क्या उपकार कर सकता था। तथापि अपने आश्रितजनोंके प्रेमकी वृद्धिके लिये उनकी साधारण सेवाको भी बड़े-से-बड़ा रूप देकर आपने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

सीताको खोजते-खोजते जब श्रीराम रावणद्वारा युद्धमें मारकर गिराये हुए जटायुकी दशा देखते हैं, उस समयका वर्णन है—

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ॥

(वा० रा० ३। ६७। २९)

"जिसके पंख कटे हुए थे, समस्त शरीर लहू-लुहान हो रहा

था, ऐसे गीधराज जटायुको हृदयसे लगाकर श्रीरघुनाथजी 'प्राणप्रिया जानकी कहाँ गयी ?' इतना कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े ।"

फिर रावणका परिचय देते और सीताको ले जानेकी बात कहते-कहते ही जब पक्षिराजके प्राण उड़ जाते हैं, तब भगवान् श्रीराम स्वयं अपने हाथोंसे उसकी दाह-क्रिया करते हैं। कैसी अद्भुत कृतज्ञता है!

इसी तरह और भी बहुत-से प्रसङ्ग हैं। वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवताओंसे बात करते समय आपने जगह-जगहपर कहा है कि 'आपलोगोंकी सहायता और अनुग्रहसे ही मैंने रावणपर विजय प्राप्त की है।'

जब श्रीहनुमान्‌जी सीताजीका पता लगाकर भगवान् रामसे मिले हैं, उस समय उनके कार्यकी बार-बार प्रशंसा करके अन्तमें रघुनाथजीने यहाँतक कहा है कि हनुमान्! जानकीका पता लगाकर तुमने मुझे समस्त रघुवंशको और लक्ष्मणको भी बचा लिया। इस प्रिय कार्यके बदलेमें कुछ दे सकूँ, ऐसी कोई वस्तु मुझे नहीं दिखायी देती। अतः अपना सर्वस्व यह आलिङ्गन ही मैं तुझे देता हूँ।' इतना कहकर हर्षसे पुलकित श्रीरामने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया। राज्याभिषेक हो जानेके बाद हनुमान्‌को विदा करते समय हनुमान्‌की सेवा और कार्योंका स्मरण करके भगवान् राम कहते हैं—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे ।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे ।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥
(वा० रा० ७। ४०। २३-२४)

'हनुमान् ! तुम्हारे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी इस विषयमें शेष उपकारोंके लिये तो हम तुम्हारे ऋणी ही बने रहेंगे । तुम्हारे द्वारा किये हुए उपकार मेरे शरीरमें ही विलीन हो जायँ—उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि आपत्तियाँ आनेपर ही मनुष्य प्रत्युपकारोंका पात्र होता है ।' इससे पता चलता है कि भगवान् श्रीरामका कृतज्ञताका भाव कितना आदर्श था ।

प्रजारञ्जकता

श्रीरामचन्द्रजीमें प्रजाको हर तरहसे प्रसन्न रखनेका गुण भी बड़ा ही आदर्श था । वे अपनी प्रजाका पुत्रसे भी बढ़कर वात्सल्य-प्रेमसे पालन करते थे । सदा-सर्वदा उनके हितमें रत रहते थे । यही कारण था कि अयोध्यावासियोंका उनपर अद्भुत प्रेम था ।

श्रीरामके वनगमनका, चित्रकूटमें भरतके साथ प्रजासे मिलने-का और परमधाममें पधारनेके समयका वर्णन पढ़नेसे पता चलता है कि आरम्भसे लेकर अन्ततक प्रजाके छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुषोंका श्रीराममें बड़ा ही अद्भुत प्रेम था । वे हर हालतमें श्रीरामके लिये प्राण न्योछावर करनेको तैयार रहते थे । उन्हें भगवान् रामका वियोग असह्य हो गया था ।

जब श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाने लगे, तब प्रजाके अधिकांश लोग प्रेममें पागल होकर उनके साथ हो लिये । भगवान् श्रीरामने बहुत-कुछ अनुनय-विनय की । किन्तु चेष्टा करनेपर भी वे प्रजाको लौटा नहीं सके । आखिर उन्हें सोते हुए छोड़कर ही श्रीरामको वनमें जाना पड़ा । उस समयके वर्णनमें यह भी कहा गया है कि

पशु-पक्षी भी उनके प्रेममें मुग्ध थे। उनके लिये श्रीरामका वियोग असह्य था। परमधाममें पधारते समयका वर्णन भी ऐसा ही अद्भुत है।

इसके सिवा जिस सीताके वियोगमें श्रीरामने एक साधारण विरह-व्याकुल कामी मनुष्यकी भाँति पागल होकर विलाप किया था, उसी सीताको—यद्यपि वह निर्दोष और पति-परायणा थी तो भी, प्रजाकी प्रसन्नताके लिये त्याग दिया। इससे भी उनकी प्रजा-रञ्जकताका आदर्श भाव व्यक्त होता है।

श्रीरामका महत्त्व

श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुके अवतार थे, यह बात वाल्मीकीय रामायणमें जगह-जगह कही गयी है। जब संसारमें रावणका उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुखी हो गये, तब उन्होंने जाकर ब्रह्मासे प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओंको धीरज बँधा रहे थे, उसी समय भगवान् विष्णुके प्रकट होनेका वर्णन इस प्रकार आता है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥

(वा० रा० १। १५। १६-१७)

'इतनेमें ही महान् तेजस्वी उत्तम देवताओंद्वारा वन्दनीय जगत्पति भगवान् विष्णु मेघपर चढ़े हुए सूर्यके समान गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्णके बाजूबंद शोभा पा रहे थे।'

इसके बाद देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान्‌ने राजा दशरथके घर मनुष्यरूपमें अवतार लेना स्वीकार किया। फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीका विवाह होनेके बाद जब वे अयोध्याको लौट रहे थे, उस समय रास्तेमें परशुरामजी मिले। श्रीराम विष्णुके अवतार हैं या नहीं—इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने श्रीरामसे भगवान् विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये कहा; तब श्रीरामचन्द्रजी-ने तुरंत ही उनके हाथसे दिव्य धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ा दिया और कहा—'यह दिव्य वैष्णव बाण है। इसे कहाँ छोड़ा जाय?' यह देख-सुनकर परशुरामजी चकित हो गये। उनका तेज श्रीराममें जा मिला। उस समय श्रीरामकी स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप॥
(वा० रा० १।७६।१७)

'शत्रुतापन राम! आपका कल्याण हो। इस धनुषके चढ़ाने-से मैं जान गया कि आप मधु दैत्यको मारनेवाले, देवताओंके स्वामी, साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं।' इस प्रकार श्रीरामके प्रभावका वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये।

रावणका वध हो जानेके बाद जब ब्रह्मासहित देवतालोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे बातचीत करते हुए श्रीरामने यह कहा कि 'मैं तो अपनेको दशरथजीका पुत्र राम नामका मनुष्य ही समझता हूँ! मैं जो हूँ, जहाँसे आया हूँ—यह आपलोग ही

बतायें।' इसपर ब्रह्माजीने सबके सामने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया। वहाँ रामके महत्त्वका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥

(वा० रा० ६। ११७। १३-१५)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं। आप ही भूत-भविष्यके शत्रुओंको जीतनेवाले और एक शृङ्गधारी वराहभगवान् हैं। राघव! आप आदि, मध्य और अन्तमें सत्यस्वरूप अविनाशी ब्रह्म हैं। आप सम्पूर्ण लोकोंके परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं। आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा शार्ङ्ग-धनुषवाले खड्गधारी विष्णु हैं और आप ही महाबलवान् कृष्ण हैं।'

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है। वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मणके साथ बातचीत करते समय श्रीरामकी सेवाका महत्त्व बतलाकर कहते हैं—

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम्।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया।
एनं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया॥

(वा० रा० ६। ११९। ३०-३१)

'सौम्य ! ये परन्तप राम साक्षात् वेदवर्णित अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं। ये देवोंके हृदय और परम रहस्यमय हैं । जनकनन्दिनी सीताके सहित इनकी सावधानीपूर्वक सेवा करके तुमने पवित्र धर्मका आचरण और बड़े भारी यशका लाभ किया है ।'

इसके सिवा और भी अनेक वार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियों-ने श्रीरामके अमित प्रभावका यथासाध्य वर्णन किया है। मनुष्य-लीला समाप्त करके परम धाममें पधारनेके प्रसङ्गमें भी यह वात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे। अतः वाल्मीकीय रामायणको प्रामाणिक ग्रन्थ माननेवाला कोई भी मनुष्य श्रीरामके ईश्वर होनेमें शङ्का कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है ।

पराक्रम

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वल, पराक्रम, वीरता और शस्त्र-कौशलके विषयमें तो कहना ही क्या है । सम्पूर्ण रामायणमें इसका वर्णन भरा पड़ा है। कहींसे भी युद्धका प्रसङ्ग निकालकर देख सकते हैं । विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय उन्होंने वात-की-वातमें ताड़का और सुवाहुको मारकर मारीचको मानवास्त्रके द्वारा सौ योजन दूर समुद्रके वीचमें गिरा दिया ।

जनकपुरमें जिस धनुषको वड़े-वड़े वीर और महावली राजा अत्यन्त परिश्रम करके भी नहीं हिला सके, उसीको श्रीरामने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया । विष्णुके धनुषपर वाण चढ़ाकर परशुरामजीका तेज हर लिया । पञ्चवटीमें चौदह हजार राक्षसोंको जरा-सी देरमें विना किसीकी सहायताके मार गिराया । वाली-जैसे महायोद्धाको एक ही वाणसे मार डाला । धनुषपर वाण चढ़ानेमात्रसे

ही समुद्रमें खलबली मच गयी और वह भयभीत होकर शरणमें आ गया। लङ्कामें जाकर भयंकर युद्धमें राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण और रावणका वध करके समस्त संसारमें विजयका डंका बजा दिया।

क्षमा

ऐसे बड़े पराक्रमी होनेपर भी श्रीरघुनाथजी इतने क्षमाशील थे कि वे अपने प्रति किये हुए किसीके अपराधको अपराध ही नहीं मानते थे। उन्होंने जहाँ कहीं भी क्रोध और युद्धकी लीला की है, वह अपने आश्रितों और साधु पुरुषोंके प्रति किये हुए अपराधोंके लिये दण्ड देने और इसी बहाने दुष्टोंको निर्दोष बनानेके लिये ही की है। मन्थरा-जैसी दासीके अपराधका उन्होंने कहीं जिक्र भी नहीं किया।

उपसंहार

श्रीरामके महत्त्वपूर्ण असंख्य आदर्श गुणोंका लेखनीद्वारा वर्णन करना असम्भव ही है। आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीसे लेकर आजतक सभी प्रधान-प्रधान कवियोंने श्रीरामचरितका वर्णन करके अपनी वाणीको सफल बनानेकी चेष्टा की है, परन्तु श्रीरामके अनन्त गुणोंका पार कोई नहीं पा सका। मैंने तो जो कुछ भी लिखा है, वह केवल श्रीवाल्मीकीय रामायणके आधारपर बहुत ही संक्षेपमें लिखा है। वह भी मेरा केवल साहसमात्र ही है; क्योंकि न तो मुझे संस्कृत-भाषाका विशेष ज्ञान है और न हिन्दीका ही। अतः विज्ञ पाठकजन त्रुटियोंके लिये क्षमा करें। इसे पढ़-सुनकर यदि कोई भगवत्प्रेमी भाई किसी अंशमें लाभ उठा सकेंगे तो मेरे लिये वह बड़े सौभाग्यकी बात होगी और मैं उनका आभारी रहूँगा।

सीताजीका आदर्श जीवन

(१)

उपक्रम

संसारकी पतिव्रता स्त्रियोंमें पतिपरायणा सीताका स्थान बहुत ऊँचा है। रामायणमें वर्णित समस्त स्त्री-चरित्रोंमें सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और अनुकरण करने योग्य है—इसमें तो कहना ही क्या है; हिंदू-समाजकी सभी स्त्रियोंके लिये प्रत्येक परिस्थितिमें सीताजीका जीवन पथप्रदर्शक है। सीताजीकी तरह असाधारण पातिव्रत्य, त्याग, शील, निर्भयता, शान्ति, क्षमा, सौहार्द, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, संयम, सेवा, सदाचार, व्यवहार-पटुता, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ संसारकी दूसरी किसी भी स्त्रीमें शायद ही मिल सकें। श्रीसीताजीके सदृश पवित्र जीवन

और अनुपम पति-भक्तिका उदाहरण जगत्के इतिहासमें मिलना कठिन है। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताजीकी सभी बातें पवित्र और आदर्श हैं। उनके जीवनकी कोई भी घटना ऐसी नहीं है, जिससे हमारी माताओं, बहुओं, बहिनों एवं बेटियोंको उत्तम शिक्षा न मिले। संसारमें आजतक जितनी स्त्रियाँ हुई हैं, उनमें सीताजीको सर्वशिरोमणि पतिव्रता कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

माया-मृगको पकड़नेके लिये श्रीरामके चले जानेके बाद रामके समान स्वरमें मारीचद्वारा कहे हुए 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' आदि शोकयुक्त वचन सुनकर घबड़ायी हुई सीताने लक्ष्मणके प्रति जो कठोर वचन कहे थे, उनमें भी प्रचुर पति-प्रेमका आदर्श भरा हुआ है; किन्तु श्रीलक्ष्मणजीका सीताके प्रति जैसा पवित्र मातृ-भाव था, उसे देखते हुए सीताजीका वह व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है; इसीलिये स्वयं सीताजीने ही आगे चलकर इसपर पश्चात्ताप किया है। हमारी माँ-बहिनोंको इससे यही शिक्षा लेनी चाहिये कि स्वामीके संकटापन्न होनेकी आशङ्का होनेपर उनकी सहायताके लिये तो प्राणपर्यन्त चेष्टा करना स्त्रीका कर्तव्य है, परन्तु अपने किसी पवित्र अनुयायी या कुटुम्बीको ताने मारना या कड़े वचन कहना उचित नहीं है।

आगे-पीछेके वर्णनोंसे इस बातका अनुमान लगाया जाता है कि नैहरमें भी सीताजीका सबके साथ बड़े ही प्रेमका बर्ताव था, छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुष सीताजीको हृदयसे चाहते थे; परन्तु वाल्मीकीय रामायणमें श्रीसीताजीके बाल-चरित्रका वर्णन नहीं है। वन-गमनके समय कहे हुए सीताके ही वचनोंसे यह बात मालूम होती है कि

माता-पिताके द्वारा उन्हें नैहरमें ही बहुत उपयोगी शिक्षा मिल चुकी थी, उन्होंने वहीं सदाचार और संयमका अभ्यास कर लिया था तथा सुख-दुःखको समान समझकर हर एक परिस्थितिमें प्रसन्न रहनेकी शक्ति प्राप्त कर ली थी । यह बात लीलाकी दृष्टिसे कही जाती है । यों तो जानकीजी साक्षात् जगदम्बा ही थीं ।

(२)

सेवाके लिये प्रेमाग्रह

वनके लिये प्रस्थान करते समय जब श्रीरामचन्द्रजी सीतासे मिलनेके लिये महलमें गये और उन्होंने यकायक उनसे अपने वन-गमनकी बात कही, उस समय तुरंत ही सीताने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया । वे कहती हैं—

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥

× × ×

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥

× × ×

सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रीँल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥

× × ×

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥
(२ । २७ । ६-७, ९, १२-१३, २३)

'नारीके लिये इस लोक और परलोकमें पति ही आश्रय देनेवाला है । पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है । यदि आप आज ही दुर्गम वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्तेके कुश-कण्टकोंको कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी । ····ऊँचे-ऊँचे महलोंमें रहना, विमानोंपर चढ़कर घूमना अथवा अणिमादि सिद्धियोंद्वारा आकाशमें विचरना इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिये किसी भी अवस्थामें पतिके चरणोंकी छायामें रहना विशेष महत्त्व रखता है ।····अतः मैं वनमें उसी प्रकार निवास करूँगी, जिस प्रकार अपने पिताके घरमें रहती थी । वीर-शिरोमणे ! वहाँ मुझे त्रिलोकीके किसी भी विषयका चिन्तन नहीं होगा, सदा पातिव्रत-धर्मका स्मरण करती हुई आपकी सेवामें लगी रहूँगी ।····नियमपूर्वक रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करूँगी और आपके साथ मीठी-मीठी सुगन्धसे भरे हुए वनोंमें विचरूँगी ।···· मेरे हृदयका सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही अर्पित है, आपके सिवा और कहीं मेरा मन नहीं जाता । यदि आपसे वियोग हुआ तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी । इसलिये आप मेरी याचना सफल करें, मुझे साथ ले चलें । मेरे साथ रहनेसे आपपर कोई भार नहीं पड़ेगा ।'

इसी तरहके और भी प्रेम और धर्मसे भरे हुए वचन सीताने उस अवसरपर कहे हैं। भगवान् रामके मुखसे वनके नाना क्लेशोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयसे तनिक भी विचलित नहीं हुई। वे पति-सेवाके सामने संसारके सुख और वैभवको कितना तुच्छ समझती थीं, पतिके चरणोंमें उनका कितना प्रगाढ़ प्रेम था, वे किस प्रकार तन-मनसे उनकी सेवा करना चाहती थीं—ये सब बातें वहाँका प्रसङ्ग पढ़नेसे ही ठीक समझमें आ सकती हैं। भगवान्से वन-गमनकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये सीताने हठपूर्वक पूरी कोशिश की। साम, दान, नीति आदि सभी उपायोंका अवलम्बन किया।

अन्तमें सीताजीके प्रेमकी विजय हुई। श्रीरामने प्रेमपूर्वक सीताको साथ ले चलना स्वीकार कर लिया। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि स्त्रीको पति-सेवाके लिये—अपने सुखके लिये नहीं—आग्रहपूर्वक पतिकी आज्ञाको दुहरवानेका अधिकार है। वह प्रेमसे पति-सुखके लिये ऐसा आग्रह कर सकती है। सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी सभी प्रशंसा करते हैं, कोई निन्दा नहीं करता। क्योंकि सीता केवल पति-प्रेम और पति-सेवाके लिये ही समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर वनमें गयी थीं, किसी इन्द्रिय-सुखरूप स्वार्थके लिये नहीं। इसीलिये सीताका यह व्यवहार पातिव्रत-धर्मकी दृष्टिसे आदर्श माना गया है। इससे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सहधर्मिणी पत्नीकी इच्छाके बिना उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाना उचित नहीं है। यदि पति स्त्रीकी सुविधाके लिये उसे अपने साथ न रखना चाहता हो, तो भी स्त्रीको कष्ट और आपत्तिके समय पतिको सुख पहुँचानेके लिये—उसकी सेवा करनेके उद्देश्यसे उसके

साथ रहना चाहिये । यह बात अवश्य है कि सर्वदा सबके लिये एक-सी व्यवस्था नहीं हो सकती; अतः समय और परिस्थिति देखकर ही कार्य करना चाहिये ।

(३)

सहिष्णुता

सीताने वनमें रहकर तो बड़े-बड़े कष्टोंको सहर्ष सहन किया ही था, इसके सिवा उनकी सहिष्णुताका एक और उदाहरण मिलता है । वन-गमनके समय जब कैकेयीने सीताको वनवासके योग्य वस्त्र पहननेके लिये दिये, उस समय रनिवासकी अन्य स्त्रियों एवं राजा दशरथके दुःखका तो कहना ही क्या, वसिष्ठ-सरीखे तपोनिष्ठ महर्षि-का मन भी क्षुब्ध हो उठा था और उन्होंने बड़े कठोर शब्दोंमें कैकेयीकी भर्त्सना की तथा सीताको वल्कल-वस्त्र पहननेसे मना किया; परन्तु ऐसी घटनाके समय भी सीताके मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ । वे कैकेयीके प्रति की गयी वसिष्ठजीकी आलोचनाको केवल चुपचाप सुनती रहीं । इतना ही नहीं, प्रत्युत सासके आज्ञानुसार उन वस्त्रोंको उन्होंने धारण भी कर लिया और वसिष्ठजीकी आज्ञा होनेपर भी अपने निश्चयको नहीं बदला । उस प्रसङ्गपर कविने कहा है—

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे ।
नैव स सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥
(२ । ३७ । ३७)

अर्थात् राजसभामें राजगुरु ऋषिशिरोमणि वसिष्ठजीके इस प्रकार कहते रहनेपर भी प्रिय पतिका अनुकरण करनेकी इच्छा रखनेवाली अनुपम प्रभावशाली सीताने अपना विचार नहीं बदला।

इस प्रसङ्गसे भी यह शिक्षा मिलती है कि सास या उसीके समान बड़ी-बूढ़ी कोई भी स्त्री कुछ कड़ी बात कहे या प्रतिकूल बर्ताव करे तो उसे खुशीके साथ सहन करना चाहिये और विपत्तिके समय पति-सेवाके लिये कहीं पतिके साथ जाय तो उन्हींकी भाँति सादगीसे रहना चाहिये, शृङ्गारादिके मोहमें नहीं पड़ना चाहिये।

(४)

वनमें सीताकी पति-सेवा

पति-सेवामें ही सदा प्रसन्न रहनेवाली सीता वनमें जाकर अपने समस्त भौतिक सुखोंको भूल जाती हैं। उन्हें राज-पाट, महल-बगीचे, धन-दौलत और दास-दासियोंकी कुछ भी स्मृति नहीं होती। वे निरन्तर भगवान् श्रीरामकी ही सेवामें तत्पर रहतीं तथा उनके आज्ञानुसार अर्घ्य, पाद्य आदिसे वनवासी ऋषियोंका यथायोग्य सत्कार किया करती थीं। वे निर्जन वनमें घरकी भाँति ही निर्भय रहतीं। उनका मन सदा श्रीराममें ही संलग्न रहता और वनमें वे श्रीरामके साथ बड़ी प्रसन्नतासे रहती थीं। चित्रकूटसे पञ्चवटी जाते समय जब श्रीरामचन्द्रजी अत्रिके आश्रमपर ठहरे, उस समय अनसूयाने सीताको बड़ा ही सुन्दर पातिव्रत-धर्मका उपदेश दिया। उसे सुनकर सीताने अनसूया-के उपदेशका समर्थन करते हुए कहा—

यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत्॥

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत् पितृवत् प्रियः ॥
(२ । ११८ । ३-४)

'यदि मेरे पतिदेव अनार्य और जीविकारहित होते, तब भी मैं बिना किसी दुविधाके इनकी सेवामें संलग्न रहती । फिर जब ये अपने गुणोंके कारण ही सबकी प्रशंसाके पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्थायी प्रेम करनेवाले और माता-पिताकी भाँति हितैषी हैं, तब इनकी सेवाके विषयमें कहना ही क्या है ।'

इसके सिवा उसी प्रसङ्गमें सीताने श्रीरामके बल और गुणोंका बखान करते हुए यह भी कहा है कि 'जब मैं पतिके साथ निर्जन वनमें आने लगीं, उस समय मेरी सास कौसल्याने मुझे जो कर्तव्यका उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें ज्यों-का-त्यों अङ्कित है । उसके पहले मेरे विवाह-कालमें अग्निके समीप माताने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह भी अच्छी तरह याद है । मैं जानती हूँ कि स्त्रीके लिये पति ही गुरु और सर्वस्व है । उसके लिये पति-सेवासे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है'—इत्यादि ।

इस प्रसङ्गसे पता चलता है कि सीताके पति-सेवाविषयक भाव कितने ऊँचे थे । माता-पिता और सासकी शिक्षाको वे कितना आदर देती थीं ।

(५)

निर्भयता

सीताके तेज और निर्भयताका नमूना भी देखिये । जिस अतुल पराक्रमी रावणका नाम सुनकर देवता लोग भी घबड़ा जाते थे, उसीको

सीता निर्भयताके साथ कैसा उत्तर देती हैं। वे रावणके दाँवमें पड़ी हुई भी अत्यन्त क्रोधसे उसका तिरस्कार करती हुई कहती हैं—

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥

× × ×

सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि।
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि॥
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि।
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि॥
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि।

(३।४७।३७, ४२–४४)

'तू सियार है और मैं सिंहनी हूँ, मैं तेरे लिये सर्वदा दुर्लभ हूँ। फिर भी क्या तू मुझे पानेका हौसला रखता है? जैसे कोई सूर्यकी प्रभाको नहीं छू सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता। तेरी इतनी हिम्मत कि तू श्रीरामकी प्यारी स्त्रीका अपहरण करना चाहता है! अवश्य ही तू सूर्य और चन्द्रमाको हाथसे पकड़नेकी अभिलाषा करता है। यदि तू श्रीरामजीकी प्यारी पत्नीपर बलात्कार करना चाहता है तो निश्चय ही जलती हुई आगको देखकर भी उसे कपड़ेमें बाँधकर ले जानेकी इच्छा करता है और लोहेकी नोकीली सलाखोंके बीचमें विचरना चाहता है।'

इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि 'तुझमें और श्रीरामचन्द्रजीमें उतना ही अन्तर है, जितना सिंह और सियारमें, समुद्र और नालेमें, अमृत और काँजीमें, सोने और लोहेमें, चन्दन और कीचड़में, हाथी और बिलावमें, गरुड़ और कौवेमें'—इत्यादि।

इससे यह सीखना चाहिये कि अपने पातिव्रत-धर्म और परमात्माके बलपर किसी भी अवस्थामें स्त्रीको डरना उचित नहीं है। अन्यायका प्रतिवाद निर्भयतासे करना चाहिये। परमात्माके बलपर सच्चा भरोसा होगा तो भगवान् अवश्य ही सहायता करेंगे।

(६)

धर्म-पालनमें दृढ़ता

किसी प्रकारके प्रलोभनसे, भयसे या बड़ी भारी विपत्ति आनेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये—इस बातकी शिक्षा भी हमें सीताके जीवनसे मिलती है। लङ्काकी अशोकवाटिकामें सीताका धर्म नष्ट करनेके लिये दुष्ट रावणने कम चेष्टा नहीं की। वह स्वयं अपनी स्त्रियोंके साथ अशोक-वाटिकामें गया; सीताको अपना वैभव दिखाकर उनका मन विचलित करनेके लिये बड़े-बड़े प्रलोभन दिये, बार-बार अनुनय-विनय की। इसपर भी सीता अपने धर्मपर अटल रहकर दुष्ट रावणका नीतियुक्त शब्दोंमें सदा तिरस्कार ही करती रहीं। जब रावणने बार-बार श्रीरामके प्रति कठोर शब्द कहे और सीताको अनेक प्रकारका भय दिखलाया, यहाँतक कि मायासे बना हुआ श्रीरामका सिर भी लाकर उनके सामने रख दिया, उस समय इन सब बातोंसे महान् दुखी होकर सीता मरनेके लिये तैयार हो गयीं, परन्तु धर्मसे डिगनेकी भावना कभी स्वप्नमें भी उनके मनमें नहीं उठी। उनका मन दिन-रात श्रीरामके चरणोंमें ही लगा रहता था। राक्षसियोंने भी सीताको भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत तंग किया। परन्तु सीता तो सीता ही ठहरीं। धर्म-त्यागकी तो बात ही क्या, उन्होंने विपत्तिसे बचनेके लिये छलसे भी कभी अपने बाहरी बर्तावमें भी कोई दोष नहीं आने दिया। उनके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी

कोई बुरी स्फुरणा भी नहीं आयी। सुन्दरकाण्डमें यह प्रसङ्ग ध्यानपूर्वक पढ़नेयोग्य है। वहाँ अशोक-वाटिकामें रहकर सीता किस प्रकार जीवन बिताती हैं—इसका बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन है। वे विलाप करती हुई कहती हैं—

न हि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्॥

× × ×

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका॥
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम्॥

(५।२६।५, ७-८)

'महारथी श्रीरामजीके बिना इन राक्षसियोंमें रहते हुए मुझे जीवनसे, धनसे और आभूषणोंसे कुछ भी मतलब नहीं है। मैं बड़ी अनार्या और असती हूँ; मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हुए हूँ। इस राक्षस रावणको तो मैं बायें पैरसे भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या है'—इत्यादि।

इससे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके वियोगमें भीषण आपत्ति आनेपर भी पतिके ही चरणोंका ध्यान रहे। मनमें भगवान् और धर्मके बलपर पूरी वीरता, धीरता और साहस रहे। स्वधर्म-पालनके लिये प्राणोंकी भी आहुति देनेके लिये सदा तैयार रहे।

(७)

सावधानी

सीताकी सावधानी भी अनुकरण करनेयोग्य है । जब हनुमान्‌जी अशोकवाटिकामें गये हैं, तब सीताने अपने बुद्धि-कौशलसे सब प्रकार उनकी परीक्षा की है । जबतक उन्हें यह विश्वास न हुआ कि हनुमान् सचमुच श्रीरामके दूत हैं और मुझे ढूँढ़नेके लिये ही यहाँ आये हैं तबतक उन्होंने हनुमान्‌से खुले दिलसे बात नहीं की । हनुमान्‌के साथ बहुत-सी बातचीत हो जानेके बाद कवि कहते हैं—

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ॥

अर्थात् इस प्रकार विश्वसनीय कारणों तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंका वर्णन करके हनुमान्‌जीने शोकसे दुर्बल हुई सीताको अपना विश्वास दिलाया, तब उन्होंने हनुमान्‌को रामका दूत समझा ।

इसके बाद जब हनुमान्‌ने रामनामाङ्कित मुद्रिका प्रदान करके उस विश्वासको और भी दृढ़ बना दिया, तब सीताने उन्हे अपने साथ बातचीत करनेकी आज्ञा दी ।

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥

(५ । ३६ । १०)

'हनुमान् ! यदि तुम आत्मज्ञानी रामके भेजे हुए हो तो मेरे साथ बातचीत कर सकते हो ।'

(८)
प्रेम

सीताका श्रीराममें अलौकिक प्रेम था। हनुमान्‌से श्रीरामचन्द्रजीका सन्देश पाकर उनके आनन्दका पार नहीं रहता। बातचीत आरम्भ होते ही वे उनसे पहले अपने स्वामी और देवरका कुशल-समाचार ही पूछती हैं। स्वयं भी उन्हींके गुणोंका बार-बार वर्णन करती हैं। बात करते-करते प्रेममें विह्वल होकर रोने लगती हैं।

पहले जब हनुमान् प्रत्यक्ष नहीं हुए थे, उस समय उनके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन सुनकर कई तरहकी कल्पना करती हुई सीता स्वयं ही अपनी स्थितिका वर्णन इस प्रकार करती हैं—

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि॥
अहं हि तस्याद्य मनोभवेन संपीडिता तद्गतसर्वभावा।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि॥

'मैं बुद्धिसे निरन्तर श्रीरामका ही चिन्तन करती रहती हूँ। वाणीसे उन्हींका वर्णन करती हूँ। उसीके अनुसार उनके विषयकी बातें मुझे सुनायी दे रही हैं और वैसी ही घटना मैं देख रही हूँ। मेरे समस्त भाव उन्हींमें समर्पित हैं, उन्हींकी अभिलाषामें मग्न होकर मैं निरन्तर उनका ही चिन्तन करती रहती हूँ। अतः वैसा ही सुनती और देखती हूँ।'

भगवान् श्रीराममें सीताका कितना प्रेम था, उनसे मिलनेके लिये उनके हृदयमें कितनी व्याकुलता थी—इसका पता रावणद्वारा उनके हरे जानेसे लेकर लंका-विजयतकके उनके, विविध

वचनोंसे लगता है। उस प्रसङ्गको पढ़ते-पढ़ते कठोर हृदयका मनुष्य भी रो पड़ता है, फिर भावुक हृदयके विषयमें तो कहना ही क्या है। भगवान् श्रीरामने सीताके प्रेमकी बारंबार प्रशंसा की है। उन्होंने स्वयं साधारण-से-साधारण विषयी मनुष्योंकी भाँति सीताके लिये विलाप करके सीताके प्रेमको प्रमाणित किया है। वे सीताके वियोगमें व्याकुल होकर रोते और विलाप करते हुए ऋषिकुमारों, सूर्य, पवन, पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओंसे भी सीताका पता पूछते फिरे हैं।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् श्रीराम अत्यन्त कामी थे। बात यह थी कि सीताजीका श्रीराममें इतना गाढ़ प्रेम था और वे उनके लिये इतनी व्याकुल थीं कि उसके कारण सर्वथा निःस्पृह श्रीरामको भी वैसा ही बर्ताव करना पड़ा। भगवान्‌का तो यह विरद ही ठहरा—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

—अतएव महाविरही और अतिकामी साधारण मनुष्यकी भाँति लीला करके उन्होंने उपर्युक्त सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि यदि हम भगवान्‌को पानेके लिये उनके विरहमें व्याकुल होंगे तो भगवान्‌को भी हमसे मिलनेके लिये उतना ही व्याकुल होना पड़ेगा। अतएव हम सब उनमें ऐसा ही प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा करें।

(९)

पर-पुरुषसे परहेज

हनुमान्‌जीसे बातचीत करते-करते जब भगवान् श्रीरामके गुण, प्रभाव और पराक्रमको याद करती हुई सीता उनके वियोग-दुःखसे

व्याकुल हो गयीं, उनके मुखपर आँसुओंकी धारा वह चली, उस समय हनुमान्‌ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव स राक्षसात् ।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥

× × ×

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥

(५ । ३७ । २०-२१, २४)

'मेरे वचन सुनते ही रघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत यहाँके लिये चल पड़ेंगे। अथवा आप मेरी पीठपर बैठ जाइये, मैं आज ही आपको राक्षसके दुःखसे मुक्त कर दूँगा।··· ऐसा करनेसे आप आज ही दैत्य-वधके लिये प्रयत्न करनेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षस-वधके उद्योगमें लगे हुए लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीको देख सकेंगी।'

हनुमान्‌जीने सीताजीसे यह भी कहा कि 'मुझमें रावणसहित समूची लङ्काको भी उठाकर ले जानेकी शक्ति है। जब मैं आपको लेकर यहाँसे चलूँगा, उस समय समूचे लङ्कानिवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकेंगे। मैं शीघ्र ही आपको श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचा दूँगा।'

हनुमान्‌के इन वचनोंको सुनकर सीता मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥
(५ । ३७ । ६२–६४)

'वानरश्रेष्ठ ! पति-भक्तिकी ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श नहीं करना चाहती-। रावणके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया, वह तो उसके बलात्कारके कारण हुआ है । उस समय मैं असमर्थ, असहाय और बेबस थी; क्या करती ? अब तो यदि श्रीरघुनाथजी राक्षसों-सहित रावणको मारकर मुझे यहाँसे ले चलें तो यही उनके योग्य पराक्रम होगा ।'

भला, विचार कीजिये—हनुमान्-सरीखे सेवक, जो सीतामें सच्चे हृदयसे मातृ-भाव रखते हैं और जिन्होंने श्रीराम-सीताकी सेवा करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मान रक्खा है, पतिव्रत-धर्मकी रक्षाकी दृष्टिसे सीता उनका भी स्पर्श नहीं करना चाहती—यद्यपि वे घोर विपत्तिमें पड़ी हुई है, उन्हें अपने स्वामीसे मिलनेकी अतिशय उत्कण्ठा है और उनके पास जानेके लिये उन्हें ऐसा स्वर्ण-संयोग प्राप्त हो गया है । धर्मपर कैसी दृढ़ आस्था है ! इसमें यह सीखनेकी बात है कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य पर-पुरुषका स्पर्श नहीं करना चाहिये ।

(१०)

क्षमा

रावणका वध और भगवान् श्रीरामकी विजय होनेके बाद विजयकी खबर देनेके लिये जब हनुमान्‌जी सीताके पास गये, उस समय भगवान् श्रीरामका सन्देश देकर उन्होंने सीतासे यह भी कहा कि 'जिन दुष्ट राक्षसियोंने आपको पहले बहुत धमकाया, डराया और दुःख दिया है, उन सबको मैं मार डालना चाहता हूँ; आप मुझे आज्ञा दें। उस समय सीता चाहतीं तो हनुमान्‌को संकेत करके उन सबसे अपना बदला ले सकती थीं; परंतु सीता तो परम दयालु साक्षात् भगवान् श्रीरामकी अर्द्धाङ्गिनी ठहरीं; वे ऐसा क्यों करने लगीं। दीनोंपर प्रेम रखनेवाली तपस्विनी सीताने कहा—

विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः॥
× × ×
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
(६।११३।३७-३८, ४३)

'वानरश्रेष्ठ! ऐसा कौन मूर्ख है, जो दूसरोंकी आज्ञा पालन करनेवाली दासियोंपर क्रोध करेगा। क्योंकि मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगता है। भाग्यकी विषमता और पूर्वकृत पापोंके कारण ही मुझे यह सब दुःख प्राप्त हुआ है। यह सब भाग्यकी ही

लीला है, इसमें दूसरोंका कोई दोष नहीं है। अतः तुम राक्षसियोंके मारनेकी बात मत कहो।....कोई पापी, धर्मात्मा या वधके योग्य अपराध करनेवाला ही क्यों न हो, साधुको तो सबपर दया ही करनी चाहिये; क्योंकि अपराध सभीसे होते आये हैं'—इत्यादि।

(११)

अग्नि-परीक्षा

जब हनुमान्‌ने अशोकवाटिकासे लौटकर श्रीरामसे यह कहा कि 'सीता आपका दर्शन करनेके लिये आतुर हो रही हैं, तब श्रीरामचन्द्रजीके आज्ञानुसार विभीषण सीताको स्नान करवाकर वस्त्रा-भूषणोंसे सुसज्जित करके उनके पास ले आये। बहुत दिनोंके बाद प्रियतम पति श्रीरामचन्द्रजीके पूर्णचन्द्रसदृश मुखको देखकर सीताका सारा दुःख दूर हो गया और उनका मुख निर्मल चन्द्रमाकी भाँति चमक उठा। परन्तु उसी समय बहुत-सी बातोंके अनन्तर श्रीराम-चन्द्रजीने कहा—

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता।
तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा॥

× × × ×

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा॥

× × × ×

यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामिति॥

(६। ११५। १३, १९, २१)

'अपमानका मार्जन करनेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य होता है, उसे मैंने अपने मानकी रक्षाके लिये रावणको मारकर पूरा कर दिया। जिस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें रावणके चंगुलसे छुड़ाया है, वह पूरा हो गया। अब मेरी तुझमें आसक्ति नहीं है। क्योंकि कोई भी कुलीन और तेजस्वी पुरुष दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको प्रेमके लोभमें पड़कर स्वीकार नहीं कर सकता। अतः तुम्हारा जहाँ मन हो चली जाओ।'

श्रीरामके इन कठोर और भयंकर वचनोंको सुनकर उस समय सती सीताकी जो दशा हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वामीके वाग्बाणोंसे सीताके मनमें भीषण घाव हो गया, वे फूट-फूटकर रोने लगीं। फिर उन्होंने हृदयस्पर्शी शब्दोंमें गद्गद वाणीसे कहा—

'स्वामी! आप साधारण पुरुषोंकी भाँति ऐसे कठोर और अनुचित वचन मुझे क्यों कह रहे हैं? मैं अपने शीलकी शपथ करके कहती हूँ, आप मुझपर विश्वास रक्खें। प्राणनाथ! हरण करके लाते समय रावणने मेरे शरीरका अवश्य स्पर्श किया था; किन्तु उस समय मैं परवश थी। इसके लिये तो मैं दोषी ठहरायी नहीं जा सकती। मेरा हृदय मेरे अधीन है और उसपर स्वप्नमें भी किसी दूसरेका अधिकार नहीं हुआ है। फिर भी यदि आपको यही करना था तो जब हनुमान्‌को मेरे पास भेजा था, उसी समय मेरा त्याग कर दिया होता, ताकि अबतक मैं अपने प्राणोंका ही त्याग कर देती।'

इस प्रकार सीताने और भी बहुत कुछ कहा, परन्तु श्रीरामने उनकी बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया। तब वे दीनभावसे ध्यानमग्न लक्ष्मणको सम्बोधित कर दीनतापूर्वक रोती हुई बोलीं—'लक्ष्मण! इस

मिथ्यापवादसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे दुःखकी निवृत्तिके लिये तुम यहीं चिता तैयार कर दो। मेरे प्रिय पतिने मेरे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जनसमुदायमें मेरा त्याग किया है। अब मैं इस जीवनका अन्त करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करूँगी।' विदेहनन्दिनी सीताके वचन सुनकर लक्ष्मण पहले तो कुछ खिन्न हुए, किन्तु पीछे आकार और संकेतसे श्रीरामका रुख समझकर उन्होंने तुरंत ही चिता तैयार कर दी। सीताने पहले श्रीरामकी प्रदक्षिणा की, उसके बाद देवता और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके प्रज्वलित अग्निके समीप जा हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥

(६। ११६। २५-२६)

'हे लोकसाक्षी अग्निदेव! यदि मेरा मन कभी श्रीरघुनाथजीसे न हटा हो तो आप सब प्रकारसे मेरी रक्षा करें। यदि मैं वास्तवमें शुद्धचरित्र हूँ और मुझे भ्रमवश श्रीरघुनाथजी दुष्टा समझ रहे हैं तो आप मेरी सब प्रकारसे रक्षा करें।'

इतना कहकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके सीता निर्भयतापूर्वक धधकती हुई प्रचण्ड अग्निमें प्रवेश कर गयीं। सब ओर हाहाकार मच गया। ब्रह्मा, शिव, कुबेर, इन्द्र, यमराज और वरुण आदि बड़े-बड़े देवता वहाँ उपस्थित हुए। उस समय ब्रह्माजीने श्रीराम और सीताके रहस्यकी बहुत-सी बातें कहीं।

इतनेमें ही भगवान् अग्निदेव सीताको लेकर अकस्मात् अपने देवरूपसे प्रकट हो गये और जनकात्मजा सीताको रामके प्रति अर्पण करते हुए बोले—

'''एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥
रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती ॥
रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः ॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥

(६ । ११८ । ५–१०)

'राम ! यह तुम्हारी सीता है । इसमें किसी प्रकारका पाप नहीं है । इस सती-साध्वीने मन, बुद्धि, वचन या नेत्रोंके द्वारा कभी तुम्हारे विपरीत कोई आचरण नहीं किया । राक्षस रावण बलके कारण उन्मत्त था । वह तुम्हारी अनुपस्थितिमें इस बेचारीको बलपूर्वक सूने आश्रमसे ले गया । उसने इसे अपने अन्तःपुरमें कैद करके रक्खा और क्रूर स्वभाववाली भयंकर राक्षसियोंका पहरा बैठा दिया; फिर भी इसका चित्त तुम्हींमें लगा रहा और यह तुम्हारा ही चिन्तन करती रही । इसे तरह-तरहके लोभ दिये गये और बहुत डाँट-डपट भी बतायी गयी

2944

परन्तु तुम्हींमें चित्त लगा रहनेके कारण इसने उस राक्षसका तो चिन्तन भी नहीं किया। इसका भाव विशुद्ध है और यह सर्वथा निर्दोष है; तुम इसे स्वीकार करो। अब इस विषयमें कुछ और मत कहना—यही मेरी आज्ञा है।'

अग्निदेवके वचन सुनकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्र हर्षसे भर आये और उन्होंने कहा—

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा॥
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि॥
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्॥
इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः॥
न च शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम्।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव॥
नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥
अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम्।
स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम्॥

(६।११८।१३–२०)

'लोकदृष्टिमें सीताकी पवित्रताकी परीक्षा आवश्यक थी; क्योंकि यह बहुत समयतक रावणके अन्तःपुरमें रही है। यदि मैं जानकीकी परीक्षा न करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है। जनकनन्दिनी सीताका मन अनन्यभावसे मुझीमें लगा रहता है और यह मेरे ही चित्तका अनुसरण करनेवाली है—यह बात मैं भी जानता हूँ। यह अपने तेजसे स्वयं ही सुरक्षित है; इसलिये समुद्र जिस प्रकार अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता उसी प्रकार रावण इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि-शिखाका कोई स्पर्श नहीं कर सकता, उसी प्रकार दुष्ट रावण अपने मनसे भी इसपर अधिकार नहीं कर सकता था; यह तो उसके लिये सर्वथा अप्राप्य थी। रावणके अन्तःपुरमें रहनेपर भी इसका किसी प्रकार तिरस्कार नहीं हो सकता था; क्योंकि प्रभा जैसे सूर्यसे अभिन्न है, उसी प्रकार इसका मुझसे कोई भेद नहीं है। जनकदुलारी सीता तीनों लोकोंमें पवित्र है; इसलिये आत्माभिमानी पुरुष जैसे कीर्तिका लोभ नहीं छोड़ सकते, वैसे ही मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। आप सभी लोकपालगण मेरे प्रेमी हैं और मेरे हितकी ही बात कर रहे हैं; इसलिये मुझे आपकी हितभरी बात अवश्य मान लेनी चाहिये।'

इतना कहकर उन्होंने अत्यन्त आनन्दपूर्वक सती सीताजीको स्वीकार कर लिया। इस प्रसङ्गसे यह सीखना चाहिये कि स्त्रीको किसी भी स्थितिमें पतिपर कोप नहीं करना चाहिये, बल्कि उसे सन्तोष करानेके लिये न्यायानुकूल चेष्टा ही करनी चाहिये।

(१२)

गृहस्थ-धर्म

जब सीताजी लङ्कासे अयोध्या लौट आती हैं, तब वे आते ही बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करती हैं, घरमें रहकर देवताओंका पूजन करती हैं तथा सभी सासुओंकी समान भावसे सेवा करती हैं। इस प्रकार सीता घरके सभी कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न करके सबको मुग्ध कर देती हैं। सीताजी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन सभी देवरोंको पुत्रवत् समझती थीं और खान-पान आदिमें उनके साथ किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं रखती थीं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि स्त्रियोंको विदेशसे लौटते ही घरमें सभी बड़ी-बूढ़ियोंको प्रणाम करना चाहिये, सबकी समान भावसे सेवा करनी चाहिये, घरका सब काम सुचारुरूपसे करना चाहिये और अपने देवर आदिके साथ शुद्ध और समान भावसे यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये।

(१३)

सीताका परित्याग

सीताके परित्यागका प्रसङ्ग बड़ा ही रोमाञ्चकारी है। इसे उत्तरकाण्डमें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। सीता सब प्रकारसे परम पवित्र हैं, इस बातको भगवान् श्रीरामचन्द्र पूर्णतया जानते थे। लङ्कामें अग्नि-परीक्षाके द्वारा सीताको सबके सामने भी पवित्र सिद्ध कर चुके थे। यह सब होते हुए भी लोकापवादपर ध्यान देकर प्रजाको सन्तुष्ट करनेके लिये उन्होंने निर्दोष सीताका परित्याग कर दिया।

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदि किसी भी भाईको यह बात अच्छी नहीं लगी; परन्तु उनके पास इसका कोई उपाय नहीं था।

यद्यपि लक्ष्मणकी इच्छा नहीं थी, तो भी उन्हें बड़े भाईकी आज्ञा मानकर सीताको वनमें छोड़नेके लिये जाना पड़ा। वनमें जाकर जब लक्ष्मणने सब बातें कहीं और सीताको मालूम हुआ कि 'वे निर्दोष होते हुए भी त्याग दी गयी हैं तब उनके दुःखका पारावार नहीं रहा। ऐसे संकटके समय भी सीताने अपने पतिपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं किया। बल्कि लक्ष्मणके साथ सन्देश भेजते हुए यह कहा—

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम्॥
शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः॥
जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव।
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः॥
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा॥
यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।

अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
(७।४८।१०–१७)

"सब सासुओंको समान रूपसे हाथ जोड़कर प्रणाम करें तथा महाराजके चरणोंमें सिर रखकर मेरी कुशल कहें। इसी प्रकार और सबसे भी सिर झुकाकर मेरी कुशल कहें। फिर अपने धर्ममें सावधान महाराजसे इस प्रकार कहें—रघुनाथजी! सीता वस्तुतः शुद्ध है और सर्वदा आपके प्रति अत्यन्त भक्तियुक्त तथा आपके हितमें तत्पर रहनेवाली है—यह बात आप जानते ही हैं। वीर! आपने अपने अपयशसे डरकर ही मेरा त्याग किया है। अतः आपकी जो निन्दा, जो अपकीर्ति हो रही है, उसका मुझे भी मार्जन करना चाहिये; क्योंकि आप ही मेरे परम आश्रय हैं।' फिर आप महाराजसे यह भी कहे कि आप जैसा बर्ताव अपने भाइयोंसे करते हैं, वैसा ही सर्वदा पुरवासियोंके साथ भी करें—इस मिथ्या अपवादके कारण खीझकर उनके प्रति किसी प्रकारका दुर्व्यवहार न कर बैठें। पुरवासियोंके साथ धर्मानुकूल आचरण करना ही आपका परम धर्म है और उससे आपको उत्तम यशकी प्राप्ति होगी। पुरुषोत्तम! मुझे अपने शरीरकी तो कुछ भी चिन्ता नहीं है। पुरवासियोंका मेरे विषयमें जैसा अपवाद है, वह उसी प्रकार बना रहे—मैं इसकी परवा नहीं करती। स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है।"

कैसे मार्मिक शब्द हैं। धन्य सती सीता और धन्य उनका धर्मप्रेम! धन्य भारतका सती-धर्म और धन्य भारतीय देवियोंका अपूर्व त्याग!

इस प्रकार सीतासे बातचीत होनेके अनन्तर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके रोते हुए लौट गये। इधर दुःखके भारसे पीड़ित आदर्श पतिव्रता सीता वनमें रोने लगीं। उनके रुदनको सुनकर वाल्मीकि ऋषि उन्हें अपने आश्रममें ले गये। सीता उनके आश्रमपर ऋषिपत्नियोंके पास रहीं।

इस प्रसङ्गमें बहुत कुछ सीखनेकी बातें हैं। सीताके उपर्युक्त शब्द नित्य पाठ करने योग्य हैं। उनका भाव समझकर उसीके अनुसार पतिव्रता स्त्रियोंको अपना जीवन बनाना चाहिये।

(१४)
पाताल-प्रवेश

जो स्त्री अपने धर्मका प्राण-पणसे पालन करती है, उसका अन्तिम परिणाम अच्छा ही होता है। अश्वमेध-यज्ञ करते समय जब भगवान् श्रीरामचन्द्रको कुश-लवके द्वारा रामायणका गान सुनते-सुनते उसमें वर्णित प्रसङ्गसे यह मालूम हुआ कि ये बालक सीताके ही पुत्र हैं, तब उनकी आज्ञासे सीता वहाँ बुलायी गयीं। सती सीता श्रीरामका ही ध्यान करती हुई सिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि ऋषिके पीछे-पीछे रोती हुई आयीं। उस समय वाल्मीकि-मुनिने सभामें आकर जो कुछ कहा, उससे सारा लोकापवाद मिट गया और सारी सभा सीता-रामके जय-जयकारसे ध्वनित हो उठी। वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए यहाँ तक कह डाला—

× × ×

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥
× × ×
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥
(७ । ९६ । १९, २२)

'मैंने हजारों वर्षोंतक तप किया है । उसकी शपथ करके कहता हूँ कि यदि सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो उन सब तपोंका फल मुझे न मिले । यह सीता पतिको ही देवता माननेवाली निष्पाप तथा पवित्र और सुन्दर आचरणोंसे युक्त है । तुम लोकापवादसे डरते हो, अतः यह तुम्हें विश्वास दिलायेगी ।'

वाल्मीकिकी शपथ सुनकर और सीताको सभामें आयी देख श्रीराम गद्गद हो गये और कहने लगे—'महाभाग ! आपके निष्कपट वचनोंसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है । पहले लंकामें भी सब देवताओं-के सामने इसने अग्नि-परीक्षा देकर मुझे विश्वास दिलाया था । मैं स्वयं भी जानता हूँ कि जानकी सब प्रकारसे शुद्ध है और कुश-लव मेरे ही पुत्र हैं; तथापि लोकापवाद हो जानेपर प्रजाको सन्तुष्ट करनेके लिये मैं प्रिया सीताको त्यागनेके लिये बाध्य हो गया । अतः आप क्षमा करें ।

उस समय सभामें ब्रह्मादिक सब देवता भी आ गये । तब रामने फिर कहा—'मुझे तो यह विश्वास हो गया है कि जानकी शुद्ध है । परन्तु जब समस्त जगत्के सामने सीता पवित्र सिद्ध हो जायगी, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा ।'

इसी समय काषाय-वस्त्र धारण किये सती सीता नीचा सिर किये भूमिकी ओर देखती हुई हाथ जोड़कर बोलीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

(७ । ९७ । १४–१६)

'यदि मैंने श्रीरामके सिवा किसी दूसरेका कभी मनसे भी चिन्तन न किया हो तो पृथ्वी देवी मुझे अपने अंदर स्थान दें । यदि मैंने मन, कर्म और वाणीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो पृथ्वी माता मुझे मार्ग दें । यदि मैं यह सत्य कहती हूँ कि रामसे बढ़कर मैं कुछ भी नहीं समझती तो माधवी देवी मुझे अपनेमें स्थान दें ।'

सीताके इस प्रकार शपथ करते ही अकस्मात् धरती फटी, उसमेंसे एक उत्तम और दिव्य सिंहासन निकला । उसे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित दिव्य देहधारी नागोंने धारण कर रक्खा था । उसपर पृथ्वी देवी बैठी थीं । माता पृथ्वीने सीताका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन किया तथा उनका स्वागत करके अपनी गोदमें बैठा लिया। इतनेमें सबके देखते-देखते सिंहासन पातालमें प्रवेश कर गया । आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी और सती सीताके जय-जयकारसे आकाशमण्डल गूँज उठा ।

(१५)

उपसंहार

सीताने अपने जीवनमें कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्रीमात्रके लिये यह सिद्ध कर दिखाया कि जो स्त्री आपत्तिकालमें भी धर्मका पालन करेगी वह सदाके लिये परमानन्दमें मग्न रहेगी और उसकी कीर्ति संसारमें सदाके लिये अमर हो जायगी । सीताकी पति-भक्ति, सासुओंके प्रति सेवा-भाव, सबका सम्मान करनेकी चेष्टा, सबके साथ यथायोग्य प्रेमका वर्ताव, ऋषियोंकी सेवा, कुश-लव-जैसे वीर पुत्रोंको जन्म देना, उनको शिक्षा देनेकी पटुता, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व, धर्मपरायणता, निर्भयता, क्षमा आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और अनुकरणीय हैं। संसारमें जो कोई स्त्री, प्रमाद, मोह और आसक्तिको छोड़कर सीताके चरित्रका अनुकरण करेगी, उसके अपने कल्याणमें तो कहना ही क्या है, वह अपने पति, पुत्र और कुटुम्बवालोंका भी उद्धार कर देगी । ऐसी सतीशिरोमणि पतिव्रता स्त्री दर्शन और पूजनके योग्य है । और अपने चरित्रसे जगत्को पवित्र करनेवाली है ।

यद्यपि श्रीसीताजी साक्षात् भगवती हैं, तथापि उन्होंने अपने मनुष्य-जीवनमें जो-जो चरित्र किये हैं, वे सब-के-सब ऐसे हैं कि जिनका अनुकरण इच्छा करनेपर हर एक स्त्री कर सकती है । उनके चरित्र अलौकिक न होकर ऐसे व्यावहारिक हैं कि जिनका आचरण करके सभी स्त्रियाँ लाभ उठा सकती हैं ।



राम-सेवक श्रीलक्ष्मण

श्रीलक्ष्मणजीकी महिमा अपार है। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीलक्ष्मणजी भी भगवान् विष्णुके ही अंशावतार माने गये हैं, किन्तु दूसरे ग्रन्थोंमें इनको भगवान् अनन्त (शेषनाग) का अवतार बताया गया है। इनके चरित्रसे यह स्पष्ट है कि इनका अवतार श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनकी सेवा करनेके लिये ही हुआ था। यही कारण है कि सभी भाइयोंका श्रीरामके प्रति प्रेम होते हुए भी देवालयोंमें श्रीरामके साथ लक्ष्मणकी ही प्रतिमा स्थापित की जाती है और रामके साथ लक्ष्मणका ही नाम लिया जाता है। भरत-शत्रुघ्न तो स्वेच्छासे भी श्रीरामसे अलग ननिहालमें रह लिये, परन्तु श्रीलक्ष्मणजीने अपने जीवनमें किसी भी परिस्थितिमें श्रीरामका साथ नहीं छोड़ा। रामके द्वारा त्याग दिये जानेपर वे तुरंत ही परमधाम सिधार गये। श्रीलक्ष्मणजी ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले, धीर, वीर, तेजस्वी, पराक्रमी और इन्द्रिय-विजयी थे। ये बड़े ही सुन्दर, सरल, तितिक्षु, निर्भय, निष्कपट, त्यागी, पुरुषार्थी, तपस्वी, सेवक, सत्यव्रती, बुद्धिमान् और नीतिनिपुण थे। श्रीराममें आपका अपूर्व

प्रेम था । श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनकी सेवा करना ही आप अपना मुख्य धर्म और कर्तव्य समझते थे और श्रीराम-सेवामें अपने आपको भूल जाते थे । जैसे भरतजीका विनय और मधुरतायुक्त गम्भीर प्रेम अनुपम है, वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीका वीरतायुक्त सेवा-मूलक प्रेम भी परम आदर्श है ।

लड़कपनमें भी श्रीलक्ष्मणजी सर्वदा श्रीरामके साथ ही रहते थे । वाल्मीकि-रामायणमें लिखा है—

बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ॥
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः ।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥

(१ । १८ । २८–३०)

'शोभाको बढ़ानेवाले श्रीलक्ष्मण बाल्यकालसे ही बड़े भाई लोकाभिराम श्रीराममें सदा ही स्वाभाविक गाढ़ स्नेह रखते हैं । वे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा और सभी प्रिय-कार्य सदा अपने शरीरसे ही किया करते हैं । शोभा-सम्पन्न श्रीलक्ष्मण भगवान् श्रीरामके मानो दूसरे प्राण ही हैं; क्योंकि उनके बिना पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रको निद्रा भी नहीं आती थी ।'

छोटी अवस्थामें ही श्रीलक्ष्मणजी अपने भाई श्रीरामके साथ विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके लिये चले गये । वहाँ ये सदा श्रीरामकी ही सेवामें लगे रहते, पत्तोंके बिछौनोंपर शयन करते और श्रीरामचन्द्रजी-

के साथ रहकर उनके आज्ञानुसार राक्षसोंका वध करके मुनिके यज्ञकी रक्षा करते थे।

विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करके दोनों भाई उनके साथ जनकपुर गये। वहाँ धनुष-भङ्गके बाद सब भाइयोंका विवाहसंस्कार सम्पन्न हुआ। सभी अयोध्याको लौटकर आनन्दसे रहने लगे। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। पीछेसे राजा दशरथकी इच्छा और मन्त्रिवर्ग तथा प्रजाकी सम्मतिसे रामके राज्याभिषेककी तैयारी हुई। यह देखकर लक्ष्मणके आनन्दका पार न रहा। श्रीरामको राजसिंहासन-पर विराजमान देखनेके लिये लक्ष्मण कितने लालायित थे, इसका पता राजसिंहासनके बदले वनवासकी आज्ञा होनेपर उनके उभरे क्रोधको देखनेसे लगता है। जो बात मनके जितनी प्रतिकूल होती है, उसपर उतना ही अधिक क्रोध आता है।

मन्थरा भी कैकेयीको उभारती हुई श्रीलक्ष्मणके प्रेमकी इस प्रकार बड़ाई करती है—

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः।
अश्विनोरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम्॥
(वा० रा० २। ८। ३१)

'लक्ष्मण सदा श्रीरामकी रक्षा करते हैं और राम सदा उनकी रक्षा करते हैं। उन दोनोंका भ्रातृ-प्रेम अश्विनीकुमारोंकी भाँति जगत्‌में प्रसिद्ध है।'

इसके बाद जब श्रीराम वन जाना स्वीकार करके माता कौसल्यासे आज्ञा लेने गये, उस समय लक्ष्मण भी साथ ही थे। वे

हर हालतमें श्रीरामके पीछे ही रहते थे। श्रीरामने माता कौसल्याको सारी कथा सुनायी। माताके दुःखका पार नहीं रहा। माताने रामको रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीराम न माने। श्रीरामका यह कार्य लक्ष्मणको अच्छा नहीं लगा। वे रामके पूर्ण अनुयायी थे, परन्तु उन्हें अपना हक छोड़ते देखकर वे शान्त न रह सके। माता कौसल्याको विलाप करते देखकर श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं—

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥
हरामि वीर्याद् दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु॥
(वा० रा० २। २१। १६–१८)

'देवि! मैं आपसे सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञादिकी शपथ करके कहता हूँ कि पूज्य भाई श्रीराममें मेरा हार्दिक दृढ़ अनुराग है। यदि श्रीराम जलती हुई आगमें या घोर जंगलमें प्रवेश करें तो आप मुझको उनसे पहले ही वहाँ प्रविष्ट हुआ समझें। जैसे सूर्य उदय होकर अन्धकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार मैं अपने पराक्रम-से आपके दुःख दूर कर दूँगा। देवी और श्रीरामचन्द्रजी भी मेरा पराक्रम देखें।'

लक्ष्मणने वीर-रसके आवेशमें तथा श्रीरामजीके प्रेमसे विवश होकर और भी बहुत सी साहसभरी बातें कहीं। माता कौसल्याको समझानेके बाद श्रीरामने लक्ष्मणको सान्त्वना देते हुए कहा—

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥
मम मातुर्महद् दुःखमतुलं शुभलक्षण ।
अभिप्रायं न विज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥
धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
× × × × ॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥
तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥
(वा० रा० २ । २१ । ३९-४१, ४३-४४)

'लक्ष्मण ! मेरे प्रति जो तुम्हारा अत्यन्त ही उत्तम प्रेम है, उसे मैं जानता हूँ । तथा तुम्हारे पराक्रम, धैर्य और दुर्धर्ष तेजसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ । शुभलक्षण ! मेरी माताको जो महान् अतुलनीय दुःख हो रहा है, वह सत्य और शमके विषयमें मेरा अभिप्राय न समझनेके कारण है । संसारमें धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य-तत्त्व प्रतिष्ठित है ।······अतः ऐसा मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता । वीर पिताजीकी आज्ञासे ही माता कैकेयीने मुझे वन जानेके लिये कहा है । इसलिये केवल क्षात्र-धर्मका अवलम्बन करनेवाली इस ओछी बुद्धिका त्याग करो । धर्मका आश्रय लो, तीक्ष्ण भावको छोड़ो और मेरे विचारके अनुसार चलो ।'

लक्ष्मणजीके स्वभावमें यह विशेषता थी कि जो बात उनके मनमें जँचती, उसे वे बड़े जोरदार शब्दोंमें श्रीरामके सामने रख

देते थे तथा अपने मनके प्रतिकूल होनेपर भी श्रीरामकी बात मान लेते थे । उनके स्वभावमें पुरुषार्थ और वीरत्व झलकते थे । इसी कारण जब श्रीरामने प्रारब्धको बलवान् बताकर लक्ष्मणको समझानेकी चेष्टा की, तब उन्होंने कहा—

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥

× × × ×

अद्य मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः ।
यैर्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥

× × × × ।

अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥
न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥

(वा० रा० २ । २३ । १६, १७, १९, २९, ३०)

'जो कायर है, जिसमें पराक्रमका नाम नहीं है, वही प्रारब्धका भरोसा करता है । सारा संसार जिनको आदरकी दृष्टिसे देखता है, वे वीर पुरुष दैवकी उपासना नहीं करते । जो अपने पुरुषार्थसे दैवको दबानेकी शक्ति रखता है, वह दैवके द्वारा किसी कार्यमें बाधा उपस्थित की जानेपर खेद नहीं करता ।·······जिन लोगोंने दैवके बलसे आपके राज्याभिषेकको नष्ट होते देखा है, वे ही आज मेरे पुरुषार्थसे दैवका भी विनाश होता देखेंगे ।······ मैं अकेला ही

समस्त विरोधी राजाओंको बलपूर्वक परास्त करनेमें समर्थ हूँ । मेरी ये दोनों भुजाएँ शोभाके लिये नहीं हैं । यह धनुष आभूषणकी जगह नहीं है, यह तलवार केवल बाँधी रहनेके लिये नहीं है । ये बाण सहारा लेनेके डंडे नहीं हैं ।'

इसके बाद माता कौसल्या और सीतासे बातचीत होनेपर जब उनको श्रीरामका अन्तिम निर्णय मालूम हो गया, तब आप अपना सारा पक्ष सर्वथा छोड़कर सब प्रकारसे श्रीरामका अनुसरण करनेके लिये तैयार हो गये । श्रीरामको वनमें जानेके लिये तैयार देखकर उनके साथ जानेको वे व्याकुल हो उठे । भाईके विरहका दुःख उनके लिये असह्य हो गया । उनके नेत्रोंसे अश्रु-धारा बह चली और वे दोनो हाथोंसे भाईके चरणोंको पकड़कर यशस्विनी सीता और कठिन नियमोंका पालन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—

यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥

× × × ×

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥

(वा० रा० २ । ३१ । ३, ५)

'प्रभो ! यदि आपने हजारों जंगली पशुओं और हाथियोंसे भरे हुए वनमें जानेका निश्चय कर लिया है, तो मैं भी धनुष लेकर आपके साथ ही आगे-आगे चलूँगा ।....आपके बिना मैं देवलोकमें जाना, अमर होना नहीं चाहता और न समस्त लोकोंका ऐश्वर्य ही प्राप्त करना चाहता हूँ ।'

यह सुनकर श्रीरामने सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणको वनमें न जाकर अयोध्यामें ही रहनेके लिये समझाया । तब लक्ष्मणने फिर कहा—

अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥
(वा० रा० २ । ३१ । ७)

'आपने तो मुझे पहलेसे ही अपने साथ रहनेकी आज्ञा दे रक्खी है; फिर इस समय मुझे क्यों रोकते हैं ?' इसपर श्रीरामने कहा—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥
मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥
(वा० रा० २ । ३१ । १०-११)

'लक्ष्मण ! तुम मेरे परम स्नेही, धर्मपरायण, धीर और सदा श्रेष्ठ मार्गपर आरूढ रहनेवाले हो । मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो तथा मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक और सखा हो । यदि आज मेरे साथ तुम भी वनके लिये चल पड़ोगे तो परम यशस्विनी माता सुमित्रा और कौसल्याकी सेवा कौन करेगा ?'

इसपर लक्ष्मणने कहा—

तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च ।
पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते॥

× × ×

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्॥
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते॥

(वा० रा० २।३१।२३-२४, २६-२७)

'मनस्विनी माता कौसल्या स्वयं ही अपना और मेरी माताका तथा मेरे-जैसे और भी बहुत-से मनुष्योंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हैं। अतः आप मुझे अपना अनुचर बना लीजिये। इसमें कुछ भी धर्म-विरुद्ध बात नहीं है। ऐसा करनेसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और आपकी भी सेवा बनती रहेगी।....मैं आपके लिये सदा फल-मूल और वनमें होनेवाली दूसरी आवश्यक वस्तुएँ तथा तपस्वियोंके लिये हवनकी सामग्री जुटाता रहूँगा। आप सीताके साथ पर्वतोंके शिखरों-पर विचरते रहियेगा। मैं आपके जागते और शयन करते समय भी सभी आवश्यक कार्य करता रहूँगा।' कैसा सुन्दर सेवा-भाव है! अपने सुखकी तनिक भी परवा नहीं है!

फिर क्या था। लक्ष्मणका ऐसा दृढ़ प्रेमाग्रह देखकर भगवान् श्रीरामको उनकी प्रार्थना स्वीकार करनेके लिये बाध्य होना पड़ा। जब श्रीरामने उनसे कहा कि 'माता सुमित्रासे विदा माँग आओ,' तब वे तुरंत ही अपनी माताके पास जाकर उनसे विदा लेकर लौट आये। उसके बाद वन जाते समय जब राम, लक्ष्मण और सीता—

सभीने माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम किया, उस समय माता लक्ष्मणका सिर सूँघकर कहती हैं—

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥
× × × ×
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥

(वा० रा० २ । ४० । ५-६, ९)

'बेटा ! तुम अपने सुहृद् रामके परम अनुरागी हो, इसलिये मैं तुमको वनवासकी आज्ञा देती हूँ । तुम्हारे बड़े भाई श्रीराम वनको जाते हैं, तुम इनकी सेवामें कभी प्रमाद न करना । निष्पाप लक्ष्मण ! ये सङ्कटमें हों, चाहे बढ़ी-चढ़ी स्थितिमें, प्रत्येक दशामें ये ही तुम्हारी परम गति हैं । संसारमें सत्पुरुषोंका यही धर्म है कि सदा अपने बड़े भाईके अधीन होकर रहे ।········तुम रामको ही साक्षात् पिता दशरथ समझो, सीताको मेरे स्थानमें समझो और वनको ही अयोध्या समझो । (मैं तुमको आज्ञा देती हूँ) तुम सुखपूर्वक जाओ ।'

कैसा सुन्दर उपदेश है । माता हो तो ऐसी हो । लक्ष्मणने भी माताकी आज्ञाका प्राण-पणसे अक्षरशः पालन किया ।

इसके बाद श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सुमन्त्रद्वारा लाये हुए रथपर बैठकर वनको चल दिये । उस समय प्रजाके लोग भी प्रेमविह्वल होकर उनके साथ-साथ चलने लगे । जब बहुत समझानेपर

भी प्रजाजन अयोध्याकी ओर न लौटे, तब लक्ष्मण और सीतासहित श्रीराम सबको तमसाके तटपर सोते छोड़कर शृङ्गवेरपुरकी ओर चले गये। वहाँ वे निषादराज गुहसे मिले। उनको सब बातें समझायीं। सन्ध्योपासनके अनन्तर लक्ष्मण गङ्गाजल ले आये। उसीको पीकर श्रीराम और सीता लक्ष्मणद्वारा तैयार की हुई घास और पत्तोंकी शय्यापर सोये। उस समय लक्ष्मणने उनके चरणोंको धोया, फिर वे कुछ हटकर पास ही दूसरे वृक्षके नीचे जा बैठे। इस प्रकार भाईके स्वाभाविक अनुरागसे लक्ष्मणको जागते देखकर गुहने कहा—'भाई लक्ष्मण! आपके लिये शय्या तैयार है। आप सुखपूर्वक सो जाइये। मैं अपने बान्धवोंसहित हाथमें धनुष लिये पहरा देता रहूँगा।'

यह सुनकर लक्ष्मणने उसकी सराहना करके कहा—

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा॥
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि।
तं पश्य सुखसंसुप्तं तृणेषु सह सीतया॥

(वा० रा० २। ५१। ९-१०)

'निषादराज! जब दशरथनन्दन श्रीराम सीताके साथ भूमिपर शयन कर रहे हैं, तब मैं कैसे नींद ले सकता हूँ तथा कैसे मेरे लिये जीवन और सुखकी सामग्रियोंको स्वीकार करना सम्भव है? देखो, सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें जिनके वेगको सहन नहीं कर सकते, वे ही श्रीराम आज सीताके साथ तिनकोंपर सुखसे सो रहे हैं।

इसके बाद सवेरा होते ही गङ्गातटपर पहुँचकर श्रीरामने

सुमन्त्रको विदा किया । फिर नौकापर बैठकर तीनों गङ्गाके उस पार गये । वहाँसे चलकर रात्रिमें वरदा नदीके पार एक वृक्षके नीचे ठहरे । लक्ष्मणने वहाँकी भूमि साफ करके कोमल पत्तियाँ बिछा दीं । श्रीराम और सीता उसपर बैठ गये । वहाँ माता-पिताके लिये शोक करते हुए श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भाई लक्ष्मण ! तुम अयोध्याको लौट जाओ, वहाँ जाकर माताओंकी सेवा करो । सीताके साथ मुझे अकेले ही वनमें जाने दो ।' इसपर लक्ष्मणने बड़े हृदयग्राही वचन कहे—

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥
न हि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परंतप ।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना ॥

(वा० रा० २ । ५३ । ३१-३२)

'रघुनन्दन ! आपके विना न तो सीताजी ही और न मैं ही जलसे अलग की हुई मछलियोंकी भाँति, मुहूर्तभर भी जी सकते हैं । परन्तप ! इस समय मैं आपको छोड़कर न तो माता सुमित्राको, न पिताको तथा न भाई शत्रुघ्नको और न स्वर्गको ही देखना चाहता हूँ ।'

उसके बाद सवेरा होनेपर वहाँसे चलकर तीनों मुनिवर भरद्वाजसे मिले और एक दिन उनके आश्रममें विश्राम किया । दूसरे दिन उनके दिखाये हुए मार्गसे चित्रकूटकी ओर चल पड़े । यमुना-तटपर पहुँचकर उससे पार उतरनेके लिये लक्ष्मणने एक बेड़ा तैयार किया । उसमें सीताके बैठनेके लिये एक सुन्दर बेतका सिंहासन बनाया । सीता कुछ लज्जित होकर उसपर बैठ गयीं । श्रीरामसहित

लक्ष्मण स्वयं ही उस बेड़ेको खेकर यमुनापार ले गये। उस बेड़ेसे उतरकर आगे-आगे लक्ष्मण, पीछे सीता और उनके पीछे दोनोंकी रक्षा करते हुए श्रीराम चले। इस प्रकार जाते-जाते वे चित्रकूट पहुँचे। वहाँ मुनिवर वाल्मीकिजीसे मिले। फिर श्रीरामकी आज्ञा लेकर लक्ष्मणने स्वयं ही एक सुन्दर पर्णशाला तैयार की। उसीमें सब सुखपूर्वक रहने लगे।

वनमें रहते समय फल-मूल तथा हवनकी सामग्री जुटाना, सीताके वस्त्राभूषणोंकी पेटी और शस्त्रास्त्रोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना और उनकी सँभाल रखना, जाड़ेकी रातोंमें खेतोंके बीचसे होकर नदीसे पानी ले आना, रास्ता पहचाननेके लिये पेड़ों और पत्थरोंपर पुराने चिथड़े लपेट रखना, झाड़ू देना, चौका लगाना, बैठनेके लिये चबूतरा तैयार करना, जलानेके लिये ईंधन इकट्ठा करना और रातभर जागकर पहरा देते रहना—ये सभी काम लक्ष्मण बड़े हर्षपूर्वक सुचारु रूपसे करते थे।

इसके बाद जब भरतजी रामको लौटा ले जानेके लिये सेनासहित चित्रकूटके पास पहुँचे, उस समय लक्ष्मणजीको भरतपर सन्देह हुआ; अतः श्रीरामके प्रेमसे विवश होकर उन्होंने भरतके प्रति कुछ कड़े शब्द कह दिये। परन्तु फिर श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे भरतकी प्रशंसा सुनकर वे चुप हो गये। भरतजी सबसे मिल-जुलकर श्रीरामकी चरण-पादुका प्राप्त करके अयोध्या लौट गये। इधर श्रीरामचन्द्रजी भी सीता और लक्ष्मणसहित चित्रकूटसे चलकर अत्रि आदि ऋषियोंके आश्रमोंमें ठहरते पञ्चवटीमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'हमें जहाँ आना था, वह स्थान यही है।

यहाँ चारों ओर दृष्टि डालकर कोई ऐसी जगह खोज निकालो, जहाँ सर्वसम्मत आश्रम बनाकर हम, तुम और यह जनकनन्दिनी रह सकें तथा जल, पुष्प और कुशा—पासमें ही हों।' तब लक्ष्मणजी अपनी बुद्धिकी प्रधानता न रखकर कहते है—

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥

(वा० रा० ३।१५।७)

'रघुनाथजी ! इस लोकमें आपके सैकड़ों वर्ष स्थित रहनेपर भी मैं सदा आपके अधीन ही हूँ। (आपके सामने अपनी इच्छासे मैं कुछ नहीं करूँगा) इसलिये आप स्वयं ही अपनी रुचिके अनुकूल स्थानमें मुझे आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये।'

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि लक्ष्मणजी विवेकहीन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे; समय-समयपर श्रीराम-सेवाके लिये बुद्धिका भी प्रयोग करते थे। किन्तु उन्हें रामके किये हुए कामपर अधिक सन्तोष होता था।

तदनन्तर श्रीरामजीने सुन्दर जगह दिखाकर उसके गुणों और शोभाका वर्णन किया। वहाँ श्रीलक्ष्मणजीने तुरंत ही भाईके आज्ञानुसार एक रहनेयोग्य आश्रम तैयार कर दिया और उसमें एक बड़ी सुन्दर विशाल पर्णशाला बना दी। उस आश्रम और पर्णशाला-को देखकर सीतासहित श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने लक्ष्मणके कार्यकी प्रशंसा करके उन्हें हृदयसे लगाया। फिर वे लोग वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

वहाँ रहते-रहते शरद्-ऋतु बीत गयी। हेमन्तका आगमन हुआ। तब एक दिन विनीत लक्ष्मणने सीताजीके साथ स्नान करनेके लिये जाते हुए श्रीरामसे कहा—

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥

(वा० रा० ३। १६। २७–३०)

'पुरुषोत्तम! इस शीतकालमें धर्मात्मा भरत आपकी भक्तिके कारण नगरमें कष्ट सहन करके तप कर रहे हैं। वे राज्य और मान तथा नाना प्रकारके बहुत-से भोगोंका भी परित्याग करके तपस्यामें संलग्न हैं और नियमित आहार करते हुए इस जाड़ेकी ऋतुमें भी पृथ्वीपर ही शयन करते हैं। निश्चय ही, भरत भी इसी वेलामें स्नान करनेके लिये उद्यत होकर मन्त्री एवं प्रजाजनोंके साथ प्रतिदिन सरयू नदीपर जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पले हुए सुकुमार भरत जाड़ेका कष्ट सहन करते हुए रात्रिके पिछले पहरमें सरयूजीमें कैसे डुबकी लगाते होंगे।'

इससे उन लोगोंके मतका खण्डन हो जाता है, जो यह कहते हैं कि लक्ष्मणजी श्रीरामसे ही प्रेम करते थे। भरतके प्रति तो उनका

द्वेषभाव ही रहा। अवश्य ही श्रीरामको दुःख देनेवालों और उनकी अवज्ञा करनेवालोंको वे क्षमा नहीं करते थे; परन्तु जब उन्हें मालूम हो गया कि भरतका कोई दोष नहीं है, बल्कि राम-वियोगमें भरत तपस्वी-जीवन बिता रहे हैं तब तो लक्ष्मण भरतपर पहलेसे भी बढ़कर परम श्रद्धा और प्रेम करने लग गये थे।

एक दिनकी बात है, पञ्चवटी-आश्रममें बैठे हुए श्रीराम लक्ष्मणसे बातें कर रहे थे। उसी समय वहाँ शूर्पणखाने आकर श्रीरामसे अपने साथ विवाह करनेके लिये कहा। श्रीरामने उसको लक्ष्मणके पास भेज दिया। शूर्पणखाने उनके पास जाकर भी वही बात कही। तब लक्ष्मणजीने हँसकर उत्तर दिया—

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि॥
(वा० रा० ३। १८। ९)

'मैं तो दास हूँ। अपने बड़े भाई श्रीरामके अधीन हूँ। कमलवर्णिनी! तुम मेरी स्त्री होकर दासी बनना क्यों चाहती हो? [तुम श्रीरामके ही पास जाओ।]'

वह श्रीरामके पास लौट आयी। वहाँ जब वह सीतापर झपटी, तब श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट लिये।

इसके बाद खर-दूषण आदि राक्षसोंने श्रीरामपर चढ़ाई की। उनको आते देखकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'निस्सन्देह तुम इन राक्षसोंको मार सकते हो, किन्तु मैं स्वयं ही इन सबोंका वध करना चाहता हूँ। अतः तुम सीताकी रक्षाके लिये उसे गुफामें ले जाओ।' लक्ष्मणने भगवान्की आज्ञा मानकर वैसा ही किया। श्रीरामने सब

राक्षसोंका संहार कर दिया। फिर शूर्पणखाकी प्रेरणासे रावण सीता-हरणके लिये मारीचको साथ लेकर पञ्चवटीके पास आया। वहाँ मारीचने विचित्र स्वर्णमृगका रूप बनाकर सीताका मन आकर्षित किया। सीताके कहनेसे भगवान् श्रीराम उसे मारनेके लिये धनुर-बाण लेकर उसके पीछे गये। वहाँ मारीच मारा गया। मरते समय उसने राम-जैसा ही स्वर बनाकर 'हा सीते! हा लक्ष्मण!!' इस प्रकार कहकर बड़े जोरसे आर्त्तनाद किया। उसे सुनकर सीता घबरा गयीं। उन्होंने समझा कि राम संकटमें पड़े हैं, अतः उनकी सहायताके लिये लक्ष्मणको तुरंत दौड़ जानेके लिये कहा। सीताके बहुत कुछ कहनेपर भी श्रीलक्ष्मणजी भाईकी आज्ञाका आदर करके सीताकी रक्षापर ही खड़े रहे। तब देवी सीताने उनके प्रेम और भावपर दोषारोपण करके कटु वचन कहे; फिर भी लक्ष्मण टस-से-मस नहीं हुए, उन्होंने श्रीरामके प्रभाव और राक्षसोंकी मायाका वर्णन करके सीताको समझानेकी चेष्टा की। परन्तु सीताको सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने क्रोधावेशमें लक्ष्मणको ताना देकर न कहनेयोग्य वचन कह डाले। तब लक्ष्मण वनके देवताओंको सीताकी रक्षाका भार सौंपकर श्रीरामके पास चले गये। श्रीरामकी आज्ञा उल्लङ्घन करनेका लक्ष्मणके लिये यह पहला ही अवसर था।

इधर रावण भिक्षुकके वेषमें आकर सीताका हरण करके ले गया और उधर लक्ष्मणजी आश्रमकी ओर आते हुए श्रीरामसे मिले। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'तुम सीताको अकेली छोड़कर चले आये, यह बहुत बुरा काम किया।' इसी तरह और भी कुछ उलाहना दिया। तब लक्ष्मणने कहा—

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः ।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥
(वा० रा० ३ । ५९ । ६)

'भगवन् ! मैं अपनी इच्छासे उनको छोड़कर यहाँ नहीं आया हूँ, उन्हींके कठोर वचनोंसे प्रेरित होकर मुझे यहाँ आपके पास आना पड़ा है ।'

इस प्रकार लक्ष्मणने सब बातें श्रीरामसे समझाकर कहीं तब भी श्रीरामको सन्तोष नहीं हुआ । वे रास्तेमें तरह-तरहसे विलाप करते आश्रमपर पहुँचे । वहाँ पर्णकुटीको खाली पा, अत्यन्त विरहाकुल होकर विलाप करने लगे । तब लक्ष्मणने उन्हें धीरज बँधाकर बहुत समझाया । इस तरह जब-जब सीताके वियोगमें श्रीरामचन्द्रजी अधीर हो जाते, तब-तब लक्ष्मण प्रेमभरे वचनोंसे उनके प्रभावका स्मरण कराते हुए उनको धैर्य बँधाया करते थे ।

दोनों भाई सीताकी खोजमें फिरते-फिरते जटायुके पास पहुँचे । उसकी दाह-क्रिया करके कबन्धका वध किया और उसीके परामर्शसे पम्पासरके पास गये; वहीं शबरीसे भेंट हुई । वहाँसे चलनेके बाद हनुमान्के द्वारा सुग्रीवसे मित्रता हुई । सुग्रीवने श्रीरामको श्रीसीताद्वारा गिराये हुए वस्त्र और आभूषण दिखाये । तब श्रीरामने उन वस्त्राभूषणों-को छातीसे लगाकर लक्ष्मणजीसे देखनेके लिये कहा । उन्हें देखकर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥
× × × ॥
(वा० रा० ४ । ६ । २२-२३)

'भगवन् ! न मैं सीताके बाजूबंदको ही जानता हूँ और न मैं कुण्डलोंको ही पहचानता हूँ, परन्तु उनके नूपुरोंको अवश्य पहचानता हूँ, क्योंकि मैं नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए नूपुरोंको देखा करता था ।' ब्रह्मचर्य-व्रत और पूज्यभावका कितना सुन्दर आदर्श है !

इसके बाद सुग्रीवसे सारी बातें हुईं । बाली-सुग्रीवका युद्ध हुआ । श्रीरामने एक ही बाणसे बालीको मार गिराया । सुग्रीवका किष्किन्धाके राज्यपर अभिषेक हुआ । श्रीराम और लक्ष्मणने प्रवर्षण-पर्वतपर रहकर वर्षा-ऋतुका समय व्यतीत किया, शरद्-ऋतु आ गयी । किन्तु इधर सुग्रीव विषय-भोगोंमें फँसकर श्रीरामके कार्यको भूल गये । यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजी सुग्रीवके पास गये । उस प्रसङ्गमें श्रीलक्ष्मणजीकी वीरता, धीरता और शीलका वाल्मीकीय रामायणमें बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है । वहाँ सुग्रीवको समझाते हुए लक्ष्मण कहते हैं—

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः ।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥
गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥
(वा० रा० ४ । ३४ । १०, १२)

'वानरराज ! जो पहले मित्रोंकी सहायतासे अपना कार्य सिद्ध करके बदलेमें उनका उपकार नहीं करता, वह कृतघ्न है । अतः वह सब प्राणियोंके लिये वध करने योग्य है । गो-हत्यारा और शराबी तथा चोर एवं व्रत भंग करनेवाला—इन सबके लिये तो

सत्पुरुषोंने प्रायश्चित्तका विधान किया है; किन्तु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।'

इसपर ताराने विनयपूर्वक लक्ष्मणको समझाकर शान्त किया । तब सुग्रीव सावधान होकर लक्ष्मणसे बोले—

कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा ।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् ।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥
(वा० रा० ४ । ३६ । ६-७)

'दशरथनन्दन ! भगवान् श्रीराम अपने कार्यसे सर्वत्र विख्यात हैं । वे साक्षात् देव (भगवान्) हैं । उनके उपकारका कोई आंशिक रूपमें भी बदला कैसे चुका सकता है । धर्मात्मा श्रीराम अपने ही तेजसे रावणका वध करेंगे और सीताको प्राप्त करेंगे । मैं तो केवल निमित्तरूपमें सहायक रहूँगा ।'

यह सुनकर श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्न हो गये और सुग्रीवकी प्रशंसा करके उनके साथ भगवान् श्रीरामके पास चले आये । उसी समय सुग्रीवके बुलाये हुए असंख्य वानर भी पहुँच गये । उनको सीताकी खोज करनेके लिये सब दिशाओंमें भेजा गया । श्रीहनुमान् लङ्कामें जाकर श्रीजनकनन्दिनीसे मिले । वहाँसे लौटकर उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको सीताकी कष्टकथा सुनायी । सीताका समाचार सुनकर असंख्य वानरोंकी बड़ी भारी सेना लेकर श्रीराम-लक्ष्मण समुद्रके तटपर पहुँचे । वहाँ श्रीरामने शरणागत विभीषणको अभय-दान

दिया। समुद्रपर सेतु बाँधकर सेनासहित श्रीराम-लक्ष्मण समुद्रके उस पार पहुँचे। लङ्कामें राक्षसोंके साथ भयानक युद्ध हुआ। एक दिनकी बात है; मेघनादने सब वानरोंके देखते-देखते मायाकी सीता-का वध करके सबको दुःखित कर दिया। हनुमान्‌द्वारा यह समाचार पाकर श्रीराम सीताके दुःखसे मूर्च्छित हो गये। उनको सचेत करनेके लिये अनेक उपचार किये गये! लक्ष्मणने पुरुषार्थकी बड़ाई करते हुए श्रीरामसे कहा—

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम्।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत।
किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यते॥

(वा० रा० ६। ८३। ४२-४३)

'प्रभो! आज इन्द्रजित्‌ने (अपने इस क्रूर कर्मसे) जो आपको बड़ा भारी कष्ट पहुँचाया है, मैं अपने भयानक कर्मसे उसे दूर कर दूँगा। अतः अब आप उठ बैठिये। महाबाहो! पुरुषसिंह! क्या आप अपने महात्मापनके महान् प्रभावको नहीं जानते? हे व्रतोंके पालन करनेवाले! आप खड़े हो जाइये।'

इस प्रकार श्रीलक्ष्मणजी अपनी गोदमें मूर्च्छित होकर सोये हुए श्रीरामको सचेत करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उसी समय विभीषण भी वहाँ आ पहुँचे। विभीषणके पूछनेपर श्रीलक्ष्मणजीने सीताके शोकमें श्रीरामके अचेत होनेकी बात कही। तब विभीषणने प्रबल युक्तियोंद्वारा सबके सामने श्रीरामको समझाया कि 'मेघनाद सीताको नहीं मार सकता। यह सब राक्षसी मायाका खेल है। आप चिन्ता

न करें। मेघनाद इस समय निकुम्भिलामें यज्ञ करने गया है, उसका यज्ञ पूरा हो जानेपर उसे जीतना कठिन हो जायगा। हमें शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उससे युद्ध करना चाहिये। अतः आप लक्ष्मणको हमारे साथ भेज दीजिये।' इस प्रकार विभीषणकी बात सुनकर श्रीराम सावधान हो गये। विभीषणसे सारी बातें दुबारा सुनीं। फिर मेघनादके पराक्रम और मायाबलका वर्णन करके लक्ष्मणसे कहा—'सुग्रीव और विभीषणके साथ जाकर तुम उसको मारो। तब श्रीलक्ष्मणजीने मेघनादको मारनेकी प्रतिज्ञा करके श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और उनको प्रणाम किया। इसके बाद वे सेनाके साथ विभीषणको लेकर गये। वहाँ मेघनादके साथ लक्ष्मणका बड़ा घोर युद्ध हुआ। उसमें श्रीलक्ष्मणने वीरता, धीरता और युद्धकौशलका बहुत विलक्षण परिचय दिया। श्रीलक्ष्मणने मेघनादके घोड़े, सारथि और रथका नाश करके बार-बार उसके अनेक धनुष काट गिराये। इस प्रकार उन्होंने राक्षसोंकी सारी सेनाको व्याकुल कर दिया। अन्तमें महाबलवान् मेघनादको मारकर लक्ष्मणजीने बड़ा अद्भुत काम किया। फिर लक्ष्मणजीने श्रीरामके पास आकर उनको प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनके इस कार्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि।

(वा० रा० ६।९१।१३-१४)

'भाई लक्ष्मण ! तुम बड़े दुष्कर कर्म करनेवाले हो। तुमने यह परम कल्याणकारी कार्य किया है। रावण-पुत्र मेघनादके मारे जानेसे अब मैं रावणको युद्धमें मरा हुआ ही समझता हूँ। उस दुरात्मा शत्रु मेघनादके मारे जानेसे अब हमारी विजय हो चुकी।'

इसके बाद श्रीरामकी आज्ञासे सुषेणने ओषधियोंका उपचार करके लक्ष्मणके शरीरकी समस्त व्यथा दूर की, इससे लक्ष्मण पूर्ववत् स्वस्थ हो गये।

राक्षसोंके मुखसे लक्ष्मणके द्वारा मेघनादके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणको बहुत दुःख हुआ। उसने क्रोधमें भरकर सेनासहित चढ़ाई की। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें रावणके शक्तिबाणसे श्रीलक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। यह देखकर श्रीरामको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने भाई लक्ष्मणकी सेवा और प्रेम याद करके विचित्र ढंगसे विलाप किया; इससे भी श्रीलक्ष्मणके प्रेमका पता चलता है।

तदनन्तर सुषेणने हनुमान्‌जीसे ओषधियाँ मँगवाकर लक्ष्मणको मूर्च्छासे जाग्रत् और स्वस्थ किया। फिर राम और रावणका घोर युद्ध हुआ; जिसमें रावण मारा गया। सीता बुलायी गयीं। राज्योचित सत्कारके साथ वे पालकीमें बैठकर आ रही थीं, पर श्रीरामने उन्हें पैदल लानेके लिये विभीषणको आज्ञा दी। यह बात लक्ष्मणको बहुत खटकी, परन्तु भगवान्‌की वैसी ही इच्छा समझकर वे कुछ नहीं बोले। श्रीरामने वहाँ आनेपर सीताका तिरस्कार किया। लक्ष्मणको बड़ा दुःख हुआ, तथापि सीताके कहनेसे श्रीरामका रुख समझकर उन्होंने सीताके लिये चिता तैयार कर दी। सीताकी अग्नि-परीक्षा हुई। सब देवता आये। राजा दशरथ भी आये। वहाँ श्रीदशरथजीने

लक्ष्मणको श्रीरामका प्रभाव सुनाकर उनकी सेवामें तत्पर रहनेके लिये उत्साहित किया। इसके बाद पुष्पक-विमानपर चढ़कर सब अयोध्या पहुँचे। वहाँ माताओं और भरत-शत्रुघ्नसे मिलाप हुआ। श्रीराम राजसिंहासनपर विराजमान हुए। तीनों भाई उनकी सेवा करने लगे। इस प्रकार आनन्दपूर्वक कितना ही समय व्यतीत हुआ।

इसके बाद सीताको घरमें रखनेके कारण होनेवाले लोकापवादको सुनकर श्रीरामने सीताका परित्याग करनेका विचार किया। उस समय सब भाइयोंको अपने पास बुलाकर श्रीरामने कहा—'तुमलोग शान्तचित्तसे मेरी बात सुनो, सीताके कारण सारे राज्यमें मेरा अपवाद हो रहा है। यद्यपि लङ्कामें सीताने अग्नि-परीक्षा देकर सबको विश्वास दिला दिया था और लक्ष्मणके सामने ही सब देवता और सब महर्षियोंने भी सीताको निष्पाप बताया था तथा मैं स्वयं भी जानता हूँ कि जानकी निर्दोष है, फिर भी अब यह लोकापवाद मुझसे नहीं सहा जाता। अतः भाई लक्ष्मण! कल सवेरे तुम स्वर्ण-भूषित रथमें बैठाकर जानकीको गङ्गापार ले जाओ और वाल्मीकि ऋषिके आश्रमके पास छोड़ आओ।'

श्रीरामकी यह आज्ञा लक्ष्मणके लिये बहुत ही भयंकर थी; परन्तु श्रीरामने सोचा कि लक्ष्मणके सिवा दूसरा कोई इस आज्ञाका पालन कर भी नहीं सकेगा। लक्ष्मणके प्रेमपर उनको पूरा भरोसा था। इसी कारण उन्होंने यह हृदयविदारक आज्ञा लक्ष्मणको ही दी। श्रीरामने अपनी शपथ दिलाकर प्रतिवाद करनेकी मनाही कर दी। इस कारण लक्ष्मण कुछ उत्तर न दे सके। इस प्रसङ्गमें लक्ष्मणने कितना असह्य कष्ट सहन करके आज्ञा-पालनका व्रत

निबाहा है, यह बात इस प्रसङ्गको पढ़नेसे ही कुछ समझमें आ सकती है। इस छोटे-से लेखमें इसका पूरा भाव व्यक्त नहीं किया जा सकता। सीताका परित्याग करते समय शोकमें भरकर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण सीतासे कहते हैं—

हृद्गतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः॥

(वा० रा० ७।४७।४)

'जनकनन्दिनी! बुद्धिमान् आर्य श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मैं इस लोकनिन्दित कार्यमें नियुक्त किया गया—इससे मेरे हृदयमें बड़ा काँटा चुभ रहा है।'

इसके सिवा लक्ष्मणने वहाँ यह भी कहा है कि 'इसकी अपेक्षा यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो अच्छा था।' ऐसी कठिन आज्ञाका पालन करना लक्ष्मणका ही काम था। वहाँसे लौटते समय भी लक्ष्मणजी श्रीरामकी ही चिन्ता करते हैं कि अब श्रीराम सीताके बिना किस प्रकार जीवन धारण कर सकेंगे। इस प्रकार सुमन्त्रसे बातचीत करते-करते लक्ष्मण अयोध्या पहुँचे और श्रीरामसे मिले। उस समय लक्ष्मणके मुखपर शोकके सभी चिह्न मौजूद थे। श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने सीताके परित्यागकी सारी बात कह सुनायी और शोकाकुल श्रीरामको बहुत प्रकारसे सान्त्वना दी। उस समय श्रीराम प्रसन्न होकर लक्ष्मणसे कहते हैं—'भाई लक्ष्मण! ऐसे विकट समयमें तुम्हारे-जैसा बन्धु बड़ा ही दुर्लभ है। सौम्य! तुम महाबुद्धिमान् हो और मेरे मनके अनुसार चलनेवाले हो।'

इसके बाद अश्वमेध-यज्ञका आयोजन हुआ। उसमें सीता

और कुश-लवको साथ लेकर श्रीवाल्मीकि ऋषि भी पधारे। कुश-लवने रामायणकी कथा सुनायी। श्रीरामकी आज्ञासे सीताने सबके सामने अपने पातिव्रत्यका परिचय दिया और वे भूमिमें प्रविष्ट हो गयीं।

इसके बाद ब्रह्माजीका सन्देश लेकर एक तपस्वी आया। उसने भगवान्‌से यह प्रतिज्ञा कराकर कि 'जो हम दोनोंकी बात सुन ले या हमें देख ले, उसका आप वध करवा दें,' एकान्तमें ब्रह्माजीका महाप्रयाण-विषयक संदेश सुनाया। उसी समय दुर्वासा ऋषि आये। उन्होंने उसी समय श्रीरामसे मिलना चाहा। उनके शापसे समस्त कुलको बचानेके लिये श्रीलक्ष्मण अपने जीवनका लोभ छोड़कर उनके आगमनकी सूचना देनेके लिये श्रीरामके पास चले गये। फिर स्वयं ही श्रीरामको प्रतिज्ञा-पालनके लिये उत्साहित करके अपनेको मार डालनेके लिये कहा। इसपर सबकी सलाहसे जब श्रीरामने लक्ष्मणका परित्याग कर दिया, तब उनका वियोग सहन करके आप एक दिन भी इस संसारमें नहीं रहे, तुरंत ही सरयू नदीके तीर जाकर योगबलसे परमधाममें पधार गये।

श्रीलक्ष्मणके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है। इनके समान परमार्थ और प्रेमका, बुद्धिमत्ता और निष्कपटताका, सत्परामर्श देने और आज्ञापालन करनेका, तेज और मैत्रीका विलक्षण समन्वय इन्हींके चरित्रोंमें पाया जाता है। सारा संसार श्रीरामका गुणगान करता है, श्रीराम भरतके गुणोंका बखान करते हैं तथा श्रीराम और भरत---दोनों श्रीलक्ष्मणके गुण गाते हैं। फिर मैं उनके गुणोंका इस छोटे-से लेखमें कैसे वर्णन कर सकता हूँ।



भरतका आदर्श चरित्र

भरतजीका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और आदर्श है। उसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दीख पड़ता। भरतजीकी महिमा अपार है। वाल्मीकीय रामायणमें आपको श्रीविष्णुका ही अंशावतार बतलाया गया है। साथ ही उनका चरित्र उन्हें एक साधु-शिरोमणि, आदर्श स्वामि-भक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति-प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। भरतजी धर्म और नीतिके जाननेवाले, सद्गुणसम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति, श्रद्धालु और बड़े बुद्धिमान् थे। वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, वीरता, गम्भीरता, सरलता, सौम्यता, मधुरता, अमानिता और सुहृदता आदि गुणोंका इनमें विलक्षण विकास हुआ था। भ्रातृ-प्रेमकी तो आप मानो सजीव मूर्ति ही थे।

भरतकी पितृ-भक्ति

विवाहके बाद भरतजी शीघ्र ही अपने मामाके साथ ननिहाल चले गये थे; इस कारण रामायणमें इनकी पितृ-भक्तिका विशेष वर्णन नहीं आता। परन्तु नानाके घर रहते हुए एक दिन इन्होंने मित्रगोष्ठीमें अपने दुःस्वप्नकी बात कहकर जो पिताके लिये दुःख प्रकट किया है और अयोध्यामें लौटनेके बाद मातासे पिताजीके स्वर्गवासका समाचार पानेपर शोकके कारण इनकी जो दशा हुई है तथा इन्होंने पिताके लिये जिस प्रकार विलाप किया है, उससे इनके

श्रद्धा-समन्वित सच्चे पितृ-प्रेमका पता चलता है। जब माताने इनसे धैर्य धारण करनेके लिये कहा, तब उसके उत्तरमें आप कहते हैं--

अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्॥
तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम्॥

(वा० रा० २। ७२। २७-२८)

'मैने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञकी दीक्षा लेंगे। इसी विचारसे मैं वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक चला था; किन्तु यहाँ आनेपर वे सभी बातें विपरीत ही दिखायी दीं। आज जो मैं सर्वदा अपना प्रिय और हित करनेवाले पिताजीको नहीं देखता, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है'—इत्यादि।

भ्रातृ-भक्ति

उपर्युक्त ढंगसे पिताके लिये शोक करते-करते ही भरतके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम उमड़ पड़ता है और वे कहने लगते हैं—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥

(वा० रा० २। ७२। ३२-३३)

'जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं, जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ और जो पवित्र कर्म करनेवाले हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको आप

शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दें । धर्मको जाननेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके लिये बड़ा भाई पिताके समान ही होता है । मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा । अब वे ही मेरे आश्रय हैं ।'

इसपर कैकेयीने उन्हें सारी घटना कह सुनायी और राज्य स्वीकार करनेके लिये कहा ।

कैकेयीके मुखसे इस प्रकार भाइयोंके वन-गमनकी बात सुनकर भरतजी महान् दुःखसे सन्तप्त हो जाते हैं । वे व्याकुलहृदयसे माताको बहुत कुछ बुरा-भला कहते हैं और यह भी कहते हैं—

लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा ।
तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम् ॥

(वा० रा० २ । ७३ । १३)

'मैं समझता हूँ, लोभके वशमें होनेके कारण तू अबतक यह न जान सकी कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है । इसी कारण तूने राज्यके लिये इतना बड़ा अनर्थ कर डाला ।'

इसके सिवा और भी बहुत-सी बातें भरतजीने माताके प्रति कहीं । उसके बाद भरतजी माता कौसल्यासे, जो उनसे मिलनेके लिये आ रही थीं, रास्तेमें ही मिले और उनकी गोदमें लिपटकर रोने लगे । इसके अनन्तर वे अनेक प्रकारसे शपथ करके माता कौसल्याको विश्वास दिलाते हैं कि रामजीके वनवासमें उनकी सम्मति नहीं थी ।

इसके बाद मुनि वसिष्ठजीके आज्ञानुसार राजा दशरथके अन्त्येष्टि-कर्मकी तैयारी होती है । उस समय राजाके शवको देखकर भरतजी फिर विलाप करते हुए कहते हैं—

किं ते व्यवसितं राजन् प्रोषिते मय्यनागते।
विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महावलम्॥

(वा० रा० २। ७६। ७)

'राजन्! मैं तो परदेश गया हुआ था, आपके पास पहुँचने भी नहीं पाया; उसके पहले ही धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीको और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने यह क्या विचार किया?'

भरतको इस प्रकार विलाप करते देखकर महामुनि वसिष्ठजी फिर समझाते हैं। उसके बाद विधि-विधानसे राजा दशरथकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न होती है। नगरमें आकर दस दिनोंतक भूमि-पर शयन करते हुए भरत बड़े दुःखसे समय बिताते हैं।

श्राद्ध आदिसे निवृत्त हो जानेपर राजसभामें श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य सभी सभासद् भरतजीको समझाकर आग्रहपूर्वक राज्य स्वीकार करनेके लिये कहने लगे। तब भरतजीने कहा—

'मैं और यह राज्य दोनों ही श्रीरामके हैं। आपलोग मुझे धर्मका उपदेश दीजिये। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार मुझसे बड़े हैं; इसलिये—

राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति॥

× × × ×

यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात्।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथाऽऽर्यो लक्ष्मणस्तथा॥
सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं वलात्।
समक्षमार्यमिश्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम्॥

(वा० रा० २। ८२। १६, १८-१९)

'पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी अयोध्याकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके भी राजा होने योग्य हैं; मैं उन्हींका अनुसरण करूँगा। आप-जैसे गुणवान् श्रेष्ठ साधु पुरुषोंके सामने ही उन्हें बलपूर्वक लौटा लानेके लिये मैं सब प्रकारके उपाय करूँगा। इसपर भी यदि आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटा लानेमें समर्थ नहीं हुआ तो जैसे श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण रहते हैं, उसी तरह मैं भी वहीं वनमें निवास करूँगा।' भरतके ऐसे भ्रातृ-प्रेममें सने वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी सभासदोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं।

श्रीरामको लौटा लानेके लिये जब भरत दल-बलके साथ चित्रकूटके लिये प्रस्थान करते हैं, उस समय रास्तेमें उनकी निषादराज गुहसे भेंट होती है। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना देखकर गुहके मनमें संदेह हो जाता है और वे अपना संदेह इनके सामने प्रकट कर देते हैं। उस समय भरत निषादसे कहते हैं—

मा भूत् स कालो यत् कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः॥
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
(वा० रा० २। ८५। ९-१०)

'निषादराज! ऐसा अवसर न आये जो इस प्रकार दुःखदायक हो। तुमको मुझपर शङ्का नहीं करनी चाहिये। क्योंकि रघुकुल-भूषण श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं और मैं उनको पिताके समान समझता हूँ। मैं उन वनवासी श्रीरामको वनवाससे लौटानेके लिये जा रहा हूँ।' भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षमें भरकर कहने लगा—

लक्ष्मणका कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते ?' यह सुनकर दुःखके कारण भरतकी आँखोंमें जल भर आया । वे लड़खड़ाती हुई वाणीमें बोले—

हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते ।
मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि ॥
न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे ।
नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे ॥
अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः ।
प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम् ॥
तं मामेवंगतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
शंस मे भगवन् रामः क्व संप्रति महीपतिः ॥
(वा० रा० २ । ९० । १५–१८)

'मुने ! मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है । फिर भी आप यदि मुझे इतना अपराधी समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया । अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न कहें । मेरी अनुपस्थितिमें मेरी माताने जो कुछ कहा या किया है, वह मुझे अभीष्ट नहीं है । मैं उससे तनिक भी प्रसन्न नहीं हूँ और न मैंने उसकी बातको माना ही है । मैं तो उन नरश्रेष्ठ श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्या लौटा ले आनेके लिये और उनके चरणोंकी वन्दना करनेके लिये वनमें आया हूँ । अतः मुझे इस प्रकार आया हुआ समझकर आप मुझपर कृपा कीजिये और बतलाइये कि इस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं ?'

यह सुनकर भरद्वाजजी बड़े प्रसन्न हुए और भरतजीकी प्रशंसा करके बोले—

जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति ।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन् ॥
(वा० रा० २ । ९० । २१)

'भरत ! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ; तथापि उसे दृढ़ करनेके लिये और तुम्हारी कीर्तिका अधिक विस्तार करनेके लिये ही मैंने तुमसे ये सब बातें पूछी हैं ।'

इसके बाद और भी बहुत-सी बातें हुईं । भरद्वाजजीके अधिक आग्रहसे उनका आतिथ्य भरतको स्वीकार करना पड़ा । ऋषिराजने बड़े ही विचित्र ढंगसे सेना और परिवारसहित भरतका अतिथि-सत्कार किया । बड़े ही आनन्दसे वह रात्रि व्यतीत हुई । उसी प्रसङ्ग-में यह बात भी आयी है—

तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च ।
भरतो मन्त्रिभिः सार्द्धमभ्यवर्तत राजवत् ॥
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च ।
बालव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने ॥
(वा० रा० २ । ९१ । ३८–३९)

'भरतने उस राजमहलमें [जिसे मुनिने अपने योगबलसे रचा था] दिव्यराज्यसिंहासन, छत्र और चँवर भी देखे तथा मन्त्रियोंके साथ उन्होंने राजा श्रीरामकी भाँति उनका सम्मान किया । श्रीरामको प्रणाम करके उस आसनकी पूजा की और स्वयं हाथमें चँवर लेकर

मन्त्रीके आसनपर जा बैठे ।' देखिये, कितनी ऊँची भावना और भक्ति है ! कैसा पवित्र भाव है । कितनी निरभिमानता और कितना त्याग है !

जब भरत चित्रकूटके निकट पहुँच जाते हैं, उस समय आकाशमें धूल उड़ती हुई देखकर श्रीराम लक्ष्मणसे उसका कारण जाननेके लिये कहते हैं । लक्ष्मण वृक्षपर चढ़कर देखते हैं और यह निश्चय करके कि सेनासहित भरत आ रहे हैं, उनके प्रति सन्देह प्रकट करते हुए कठोर वचन कहने लगते हैं । तब श्रीरामचन्द्रजी भरतके गुण और प्रेमकी बड़ाई करते हुए कहते हैं—

प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान् भरतो द्रष्टुमर्हति ।
अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥
विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् ।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद् विशङ्कसे ॥
न हि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥

× × × ×

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद् वचः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥

(वा० रा० २ । ९७ । १३–१५, १७-१८)

'जिस प्रकार इस समय भरत हमलोगोंसे मिलनेके लिये आ रहा है, यह सर्वथा उचित है । हमलोगोंके अहितका आचरण

तो वह कभी मनसे भी नहीं कर सकता। भरतने तुम्हारा कब और क्या अपकार किया है, जिसके कारण तुम आज उससे ऐसा भय, इस तरहकी आशङ्का कर रहे हो? (भरतके आनेपर) तुम उसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न कहना। यदि तुमने उसके साथ कोई प्रतिकूल वर्ताव किया या अप्रिय वचन कहे तो वह वर्ताव मेरे ही साथ किया समझा जायगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो भरतसे मिलनेपर मैं उसे कह दूँगा कि यह राज्य लक्ष्मणको दे दो! मेरे ऐसा कहनेपर वह अवश्य ही मेरी बातका अनुमोदन करेगा और तुमको राज्य दे देगा।'

इस प्रकार यद्यपि भरतजी सर्वथा साधु और निर्दोष थे, तथापि उनको सबके सन्देहका शिकार बनना पड़ा। भरतके सदृश सर्वथा निःस्पृह, धर्मात्मा एवं त्यागी महापुरुषका इस प्रकार सबके सन्देहका शिकार बनना जगत्के इतिहासमें एक अनोखी बात है। इतनेपर भी भरत सब कुछ सहते हैं। धन्य उनका प्रेम! धन्य उनकी स्वामिभक्ति!! और धन्य उनकी सहिष्णुता!!!

इधर भरत भाई शत्रुघ्न, गुह और प्रधान-प्रधान मन्त्रियोंको श्रीरामके आश्रमको खोजनेके लिये आज्ञा देकर कहने लगते हैं—

यावन्न चन्द्रसङ्काशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम्।
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति॥

× × × ×

यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति॥

यावन्न राज्ये राज्यार्हः पितृपैतामहे स्थितः ।
अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति ॥
(वा० रा० २ । ९८ । ७, ९-१०)

'जबतक भाई श्रीरामचन्द्रके कमलदलसदृश विशाल नेत्रोंवाले और चन्द्रमाके समान सुशोभित उस मुख-कमलको न देख लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । जबतक अपने भ्राताके राज-चिह्नोंसे युक्त युगल चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम न कर लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी भगवान् श्रीराम अभिषेकके जलसे सिक्त होकर अपने पिता-पितामहोंके साम्राज्यपर प्रतिष्ठित न हो जायँगे, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ।'

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर पुरुषश्रेष्ठ भरतजीने पैदल ही श्रीरामकी खोज करनेके लिये उस गहन वनमें प्रवेश किया । ऊँचे वृक्षपर चढ़कर उन्होंने दूरसे ही श्रीरामके आश्रमको और उसमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको पहचाना; इससे उनमें नया जीवन आ गया । वे बड़े प्रसन्न हुए और गुहको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये ।

श्रीरामकी कुटियाके पास पहुँचकर भरत देखते हैं कि समस्त पृथ्वीके स्वामी धर्मपरायण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ एक चबूतरेपर बैठे हैं । उन्होंने कृष्णमृगचर्म और वल्कल-वस्त्र धारण कर रक्खे हैं । उनके मस्तकपर जटाएँ शोभा दे रही हैं तथा सिंहके-से कंधे, बड़ी-बड़ी भुजाएँ और कमलके समान

नेत्र हैं ! श्रीरामको इस अवस्थामें देखकर महात्मा भरत शोकमें निमग्न हो जाते हैं। भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही आर्तभावसे विलाप करते हुए गद्गद वाणीसे कहने लगते हैं—

य: संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम्।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः॥
वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः।
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन्॥

× × × ×

मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः।
धिग् जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्॥

(वा० रा० २।९९।३१-३२, ३६)

'हाय ! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सम्मान पानेयोग्य हैं, वे ही ये मेरे बड़े भाई यहाँ जंगली पशुओंसे घिरे बैठे हैं। जो महात्मा पहले हजारोंकी लागतके वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे आज यहाँ धर्माचरण करते हुए केवल दो मृगचर्म धारण करके रहते हैं। हाय ! जो सब प्रकारसे सुखके योग्य हैं, वे श्रीराम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। मैं कितना क्रूर हूँ ! मेरे इस लोक-निन्दित जीवनको धिक्कार है।'

इस प्रकार विलाप करते-करते भरतजी दुःखसे व्याकुल हो गये। उनके मुख-कमलपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे अत्यन्त दुःखसे विह्वल हो जानेके कारण श्रीरामके चरणोंको छू सकनेके पहले ही 'हा आर्य !' कहकर उनके पास दीनकी भाँति गिर पड़े। शोकसे उनका गला रुँध गया, कुछ भी बोल नहीं सके। फिर

शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। जटा और वल्कल धारण किये भरतको हाथ जोड़े पृथ्वीपर पड़ा देख श्रीरामने बड़ी कठिनतासे पहिचाना। उन्होंने दोनों भाइयोंको उठाया और छातीसे लगा लिया। भरतका बर्ताव देखकर समस्त वनवासी रोने लगे।

तदनन्तर भाई भरतको गोदमें बैठाकर श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—'भाई! तुम राज्य छोड़कर वल्कल-वस्त्र, मृगचर्म और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतजीने पिताकी मृत्युका समाचार सुनाकर कहा—

तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद।
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान् सुहृदः कुरु॥
× × × ×
एभिश्च सचिवैः सार्द्धं शिरसा याचितो मया।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥

(वा० रा० २। १०१। १०; १२)

'सबको सम्मान देनेवाले रघुनन्दन! परम्परानुसार तथा योग्य होनेके कारण भी इस राज्यके अधिकारी आप ही हैं। अतः न्यायसे इस राज्यको आप धर्मानुसार ग्रहण करके अपने सुहृदोंका मनोरथ पूर्ण करें। मैं आपका छोटा भाई, शिष्य और दास हूँ। इन मन्त्रियोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपा करें।'

इसी तरहकी और भी बहुत-सी बातें कहकर भरतजी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े और राज्याभिषेकके

लिये उनसे प्रार्थना करने लगे। तब श्रीरामजीने बहुत-सी शास्त्रोक्त बातें कहकर और पिताकी आज्ञाका महत्त्व दिखाकर भरतको राज्य ग्रहण करनेके लिये बहुत कुछ समझाया, परन्तु उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"भगवन्! आपकी बराबरी कौन कर सकता है? आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति—सब समान हैं। जिसको आपकी तरह ज्ञान है, वह सङ्कट पड़नेपर भी विषाद नहीं करेगा; परन्तु मैं ऐसा नहीं हूँ। अतः मैं बारंबार आपके चरणोंमें माथा टेककर याचना करता हूँ, आप दया कीजिये! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, मेरा और मेरी माताका कलङ्क धोकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये।' इत्यादि—

भरतके इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण ऋत्विज, पुरवासी, भिन्न-भिन्न समुदायके नेता और माताएँ—ये सब अचेत-से होकर आँसू बहाते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे और सभीने अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीसे लौटनेकी प्रार्थना की।

तदनन्तर श्रीरामने फिर बहुत-से न्याय और धर्मसे पूर्ण वचन कहकर भरतको समझाया। इस प्रकार बात होते-होते जब श्रीरामचन्द्रजीने किसी तरह भी स्वीकृति नहीं दी, तब भरतजीके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे बोले—जबतक मेरे स्वामी मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं बिना कुछ खाये-पीये यहीं इनके सामने बैठा रहूँगा।' इतना कहकर वे दर्भासन बिछाकर जमीनपर बैठ गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने फिर भरतको समझाया कि 'भाई! तुम्हारा यह कार्य धर्मके विरुद्ध है। अतः तुम इस दुराग्रहका त्याग करो।' यह सुनकर भरत तुरंत ही खड़े होकर पुनः सबके सामने कहने

लगे कि 'यदि पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये इनका वनमें रहना अनिवार्य हो तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षतक वनमें निवास करूँगा।' इसपर फिर श्रीरामने भरतको समझाया कि 'भाई भरत! इस प्रकार बदला करनेका हमलोगोंको अधिकार नहीं है।' इसके बाद सबके सामने भगवान् श्रीरामने कहा—

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम्।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि॥
अनेन धर्मशीलेन वनात् प्रत्यागतः पुनः।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः॥
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम्॥

(वा० रा० २। १११। ३०-३२)

'मैं जानता हूँ भरत बड़ा क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाला है। इस सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण वर्तमान हैं। वनवासकी अवधि समाप्त करके फिर जब मैं लौटूँगा, तब मैं अपने इस धर्मशील भाईके साथ इस पृथ्वीका प्रमुख राजा बनूँगा। कैकेयीने राजासे वर माँगा, मैंने उनकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया। इसलिये भाई भरत! अब तुम मेरा कहना मानकर उन पृथ्वीपति राजाधिराज पिताजीको असत्यके बन्धनसे मुक्त करो।'

उन अतुलित तेजस्वी भाइयोंका वह रोमाञ्चकारी संवाद सुनकर और आपसका प्रेमपूर्ण बर्ताव देखकर वहाँ आये हुए जनसमुदायके साथ सभी महर्षि विस्मित और मुग्ध हो गये। अन्तरिक्षमें अदृश्य-

भावसे खड़े हुए मुनि और वहाँ प्रत्यक्ष बैठे हुए महर्षि उन दोनों भाइयोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे !

इसके बाद सब महर्षियोंने भरतको श्रीरामकी बात मान लेनेके लिये समझाया । इससे श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु भरतको संतोष नहीं हुआ । वे लड़खड़ाती हुई जबानसे हाथ जोड़कर फिर श्रीरामसे कहने लगे—'आर्य ! मैं इस राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता । आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये ।' यह कहकर भरत अपने भाईके चरणोंमें गिर पड़े । तब श्रीरामचन्द्रने उनको उठाकर गोदमें बैठा लिया और मधुर स्वरसे बोले—

आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या ।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥

(वा० रा० २ । ११२ । १६)

'प्यारे भाई ! तुम्हें स्वभावसे ही तथा शिक्षाके फलस्वरूप जो यह विनययुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, इससे तुम सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेमें भी पूर्णतया समर्थ हो ।'

सूर्यतुल्य तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके ये प्रेम और शिक्षाभरे वचन सुनकर और उनकी दृढ़ता देखकर भरतने कहा—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥

(वा० रा० २ । ११२ । २१)

'आर्य ! ये दो स्वर्णभूषित पादुकाएँ हैं, आप इनपर अपने चरण रक्खें । ये ही सम्पूर्ण जगत्‌के योगक्षेमका निर्वाह करेंगी ।'

धन्य है भरतके उच्चतम भावको !

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन पादुकाओंपर अपने मङ्गलमय चरणयुगल रखकर उन्हें भरतको दे दिया। उन पादुकाओंको प्रणाम कर भरतने श्रीरामसे कहा—

चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ॥
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप।
चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।

(वा० रा० २। ११२। २३–२६)

'वीर रघुनन्दन ! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका आहार करूँगा और आपके आनेकी बाट जोहता हुआ नगरसे बाहर ही रहूँगा। परंतप ! इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रहेगा। रघुश्रेष्ठ ! चौदह वर्ष पूरे होनेके बाद, उसी दिन यदि मुझे आपके दर्शन नहीं मिलेंगे तो मैं धधकती आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।'

भरतकी यह प्रतिज्ञा सुनकर भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक उसका अनुमोदन किया। तदनन्तर दोनों भाइयोंको माता कैकेयीके साथ अच्छा व्यवहार करनेकी शिक्षा देकर और दोनोंका हृदयसे आलिङ्गन करके विदा किया। उस समय भाई भरतके वियोगमें श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंमें जल भर आया।

तदनन्तर भरतजी भगवान्‌की पादुकाओंको मस्तकपर धारण करके बड़ी प्रसन्नतासे रथपर सवार हुए तथा रास्तेमें भरद्वाजजीसे मिलकर, उनसे सारी बातें कहकर और आज्ञा लेकर शृङ्गवेरपुर होते हुए अयोध्या पहुँचे फिर माताओंको महलमें रखकर भरतने सब गुरुजनोंसे कहा—

नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः ।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम ।
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥
(वा० रा० २ । ११५ । २-३)

'अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ । बहुत दुःखकी बात है, महाराज तो स्वर्ग सिधार गये और मेरे परम पूज्य गुरु श्रीराम वनमें निवास करते हैं । अतः मैं वहीं रहकर श्रीराम-वियोगमें इन सब दुःखोंको सहन करूँगा और राज्यके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतीक्षा करूँगा; क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमलोगोंके राजा हैं ।'

भरतकी ऐसी बात सुनकर मन्त्रियोंसहित पुरोहित श्रीवसिष्ठजीने कहा—

सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया ।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥
नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे ।
मार्गमार्यं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान् ॥
(वा० रा० २ । ११५ । ५-६)

'भरत ! भ्रातृ-भक्तिसे प्रेरित होकर तुमने जो वचन कहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। वास्तवमें वह तुम्हारे ही योग्य है। तुम अपने भाईके दर्शनार्थ सदा ही लालायित रहते हो, उन्हींके हितमें संलग्न हो और अत्यन्त उत्तम मार्गपर चल रहे हो; अतः तुम्हारे विचारका अनुमोदन कौन पुरुष नहीं करेगा।'

इस प्रकार सबकी आज्ञा लेकर भरत श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाओंको सिरपर रक्खे शत्रुघ्नके साथ नन्दिग्राम चले गये। वहाँ रथसे उतरकर सब गुरुजनोंसे बोले—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते॥

× × ×

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम॥
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम्।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति॥
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम्।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सहपादुकौ॥
ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः।
निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवृत्तिताम्॥
राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम्॥

(वा० रा० २। ११५। १४, १६–२०)

'मेरे भाईने यह राज्य मुझे उत्तम धरोहरके रूपमें दिया है।

उनकी ये सुवर्ण-भूषित पादुकाएँ ही सबका योगक्षेम निबाहनेवाली हैं। मैं इन्हें आर्य श्रीरामचन्द्रके साक्षात् चरण मानता हूँ। आपलोग शीघ्र ही इनपर छत्र लगायें। मेरे गुरुकी इन चरणपादुकाओंके प्रभावसे ही इस राज्यमें धर्मकी स्थापना होगी। उन्होंने प्रेमके कारण ही मुझे यह अमूल्य धरोहर सौंपी है। अतः मैं उनके लौटनेतक इसकी भलीभाँति रक्षा करूँगा। तथा उनके आनेपर शीघ्र ही इनको पुनः भगवान्‌के चरणोंसे युक्त कर इन पादुकाओंसे सुशोभित आर्यके चरणोंका दर्शन करूँगा। श्रीरघुनाथजीके आते ही उनकी सेवामें यह राज्य समर्पित कर दूँगा; फिर मेरा सब भार हल्का हो जायगा। मै उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। मेरे पास धरोहरके रूपमें रक्खे हुए इस राज्यको, इन पादुकाओंको और अयोध्याको भी श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके दुःख और पापोंसे मुक्त हो जाऊँगा।'

फिर धैर्यवान् भरतजी जटा-वल्कल धारण किये मुनिका वेष बनाकर नन्दिग्राममें रहने लगे। वे राज्य-शासनका समस्त कार्य भगवान्‌की चरणपादुकाओंको निवेदन करके करते थे। उनके ऊपर स्वयं छत्र लगाते और चँवर डुलाते थे। इस प्रकार उन्होंने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी चरणपादुकाओंका राज्याभिषेक किया। राज्यका जो कोई कार्य उपस्थित होता, जो भी बहुमूल्य भेंट आती, भरतजी वह सब पहले उन पादुकाओंको अर्पण करते और पीछे उसका यथायोग्य प्रबन्ध करते।

* * * *

लङ्का-विजयके बाद विभीषणको राज्य देकर, सीता और

लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीराम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामजीसे स्नान आदि करके वस्त्रालङ्कार धारण करनेकी प्रार्थना की। तब भगवान् भरतकी भक्ति याद करके कहते हैं—

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः॥
तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च॥
× × ×
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
(वा० रा० ६।१२१।५–६, १८)

'सत्यपरायण, धर्मात्मा, महाबाहु, सुकुमार भरत सब प्रकारके सुख-भोगोंके योग्य होकर भी मेरे लिये दुःख भोग रहा है। उस धर्मचारी कैकेयी-पुत्र भरतके विना मुझे स्नान और वस्त्राभूषण धारण करना रुचिकर नहीं है। उस भाई भरतको देखनेके लिये तो मेरा मन छटपटा रहा है।' इससे माल्म होता है कि भरतका श्रीराममें कितना प्रेम था।

उसके बाद श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब समुदायके साथ पुष्पक-विमानपर बैठकर अयोध्याके लिये चले और भरद्वाज-आश्रमपर पहुँचकर अपने आनेका शुभ संवाद देनेके लिये हनुमान्को प्यारे भरतके पास भेजा। हनुमान्जी नन्दिग्राममें पहुँचकर क्या देखते हैं—

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम्॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम्॥

नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् ॥
(वा० रा० ६ । १२५ । ३०–३२)

श्रीहनुमान्‌ने देखा कि भरत शहरके बाहर आश्रममें रहते हैं। भाईके वियोगसे उनका शरीर दुर्बल हो गया है। उसपर मैल जम गयी है। उनका मुख सूख गया है, उसपर दीनताका भाव झलक रहा है। वे केवल फल-मूलका ही आहार करते हैं। इन्द्रियाँ उनके वशमें हैं। वे मस्तकपर लंबी जटाओंका भार तथा शरीरपर वल्कल और मृगचर्म धारण किये धर्माचरणपूर्वक तपस्या कर रहे हैं। उनका मन सब ओरसे संयत और ध्यानमें निमग्न है। उनका तेज ब्रह्मर्षियों-के समान है। वे श्रीरामकी चरण-पादुकाओंकी सेवा करते हुए पृथ्वीका शासन कर रहे हैं। हनुमान्‌जीने यह भी देखा कि भरतके प्रेम और व्यवहारसे आकर्षित होकर काषाय-वस्त्र धारण किये हुए मन्त्री, पुरोहित और सेनाके प्रधान-प्रधान वीर भी उन्हींके पास रहते हैं। वायुपुत्र हनुमान्‌जीने भरतजीको श्रीरामके आगमनका समाचार सुनाया।

हनुमान्‌के मुखसे भगवान्‌के आनेका समाचार सुनकर भरतजी हर्षसे विह्वल हो गये। उनको शरीरकी सुधि नहीं रही। थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर उन्होंने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रुओं-से भिगोते हुए उनसे कहने लगे—

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥
(वा० रा० ६ । १२५ । ४३)

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद् वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥
(वा० रा० ६ । १२६ । १)

'मुझपर दया करके आनेवाले तुम कोई देवता हो या मनुष्य ? सौम्य ! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय सन्देश दिया; इसके बदलेमें तुम्हें जो कुछ प्रिय हो, वह मैं दे सकता हूँ । मेरे स्वामीको गहन वनमें गये हुए बहुत वर्ष बीत गये । आज ही मैं अपने नाथका आनन्द-दायक समाचार सुन रहा हूँ ।'

इसके बाद भरतजीने वानरोंके साथ श्रीरामकी मित्रता होनेके विषयमें पूछा । इसपर हनुमान्‌जीने वन-गमनसे लेकर लङ्कासे लौटते हुए भरद्वाजके आश्रममें पहुँचनेतककी सारी बातें कह सुनायीं । यह सब सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और पास ही खड़े हुए शत्रुघ्नको नगरकी सजावट करने और सबको श्रीरामकी अगवानीके लिये तैयार होनेकी सूचना देनेको कहा । समाचार सुनते ही सारे नगरमें हर्ष और प्रेमकी बाढ़ आ गयी । सभी भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे । धर्मज्ञ भरतजीने श्रीरामकी पादुकाओंको सिरपर रखकर उन्हें सुन्दर मालाओंसे सुशोभित किया और उनपर स्वर्णछत्र लगाकर स्वर्णभूषित सफेद चँवर डुलाते हुए चले । थोड़ी दूर जानेपर जब उन्हें श्रीरामचन्द्रजी आते हुए दिखायी नहीं दिये, तब वे प्रेमाकुल होकर हनुमान्‌जीसे पूछने लगे—'हनुमान् ! क्या बात है ? अभीतक रघुकुल-भूषण आर्य श्रीराम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हैं ।' इतनेमें ही श्रीभरतजीने विमानको आते हुए देखा और उसपर बैठे हुए श्रीरामको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । फिर श्रीरामकी आज्ञासे

वह विमान पृथ्वीपर उतरा । श्रीभरतजी विमानके भीतर श्रीरामको देख हर्षसे भर गये और पुनः उनके चरणोंमें गिर पड़े । श्रीरामचन्द्रजीने बहुत दिनोंके बाद दृष्टिगोचर हुए भाई भरतको उठा गोदमें बैठाकर प्रेम और हर्ष पूर्वक हृदयसे लगाया । इसके बाद भरतने भाई लक्ष्मणसे मिलकर सीताके चरणोंमें प्रणाम किया ।

तदनन्तर धर्मज्ञ श्रीभरतजीने श्रीरामकी उन दोनों पादुकाओंको हाथमें लेकर श्रीरामके चरणोंमें पहना दिया और हाथ जोड़कर कहा—

एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ।
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ॥
यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥
(वा० रा० ६ । १२७ । ५४-५५)

'यह धरोहररूपमें रक्खा हुआ आपका सम्पूर्ण राज्य मैंने आज आपको लौटा दिया । आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हो गये, जो मैं अयोध्यामें लौटकर आये हुए आपको देख रहा हूँ'—इत्यादि ।

—इस प्रकार कहते हुए भ्रातृप्रेमी भरतको देखकर राक्षसराज विभीषण और सुग्रीवादि वानरोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

श्रीरामका राज्याभिषेक हो जानेके बाद भरत भी लक्ष्मणकी भाँति ही श्रीरामकी सेवामें रहने लगे । कुछ दिन बाद श्रीरामने भरतके मामाका समाचार पाकर गन्धर्वोंपर विजय करनेके लिये भरतको भेजा । भरतजीने भगवान्‌की आज्ञा पालन करनेके लिये ही वहाँ जाकर गन्धर्वोंपर विजय प्राप्त की । पुनः भगवान्‌के आज्ञानुसार वहाँके राज्यपर अपने पुत्रोंका अभिषेक करके वे शीघ्र ही भगवान्‌के

पास लौट आये और उनसे सब बातें कह दीं। पूरी बातें सुन लेनेपर श्रीरामने भरतकी प्रशंसा की और बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद लक्ष्मणका त्याग करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने परमधाम पधारनेकी इच्छासे भरतका राज्याभिषेक करनेकी बात कही, परन्तु भरतने उसे स्वीकार नहीं किया। वे इस तरहकी बात सुनते ही अचेत हो गये और चेत होनेपर राज्यकी निन्दा करते हुए बोले—

सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन॥

(वा० रा० ७। १०७। ६)

'राजन्! मैं निश्चयपूर्वक सत्य तथा स्वर्गकी शपथ करके कहता हूँ कि मै आपसे अलग रहकर राज्य भी नहीं चाहता।'

—तब श्रीरामने भरतकी सलाहसे कुश और लवको राज्यपर अभिषिक्त किया और शत्रुघ्नको बुलाकर सबके साथ परमधाम पधार गये।

वास्तवमें भरतकी राम-भक्ति जगत्के इतिहासमें अद्वितीय है। इनका त्याग, संयम, व्रत, नियम—सारी सराहनीय और अनुकरणीय हैं। इनके चरित्रसे स्वार्थ-त्याग, विनय, सहिष्णुता, गम्भीरता, सरलता, क्षमा, वैराग्य और स्वामिभक्ति आदि सभी गुणोंकी शिक्षा ली जा सकती है। भक्तिसहित निष्कामभावसे गृहस्थमें रहते हुए प्रजापालन करनेका ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है।



श्रीरामके दासानुदास श्रीशत्रुघ्न

श्रीशत्रुघ्नजीका चरित्र भी अपने ढंगका निराला ही है। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीशत्रुघ्नजीको भी भगवान् विष्णुका ही अंशावतार माना गया है; परन्तु उनके चरित्रसे यही सिद्ध होता है कि आप श्रीरामके दासानुदासोंमें अग्रगण्य थे। श्रीशत्रुघ्नजी मौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषयविरागी, सरल, तेजःपूर्ण, गुरुजनके अनुगामी और वीर थे। श्रीरामायणमे इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता; परन्तु जो कुछ मिलता है उसीसे इनकी महत्ताका कुछ अनुमान किया जा सकता है। आप बाल्यकालसे ही सदा भरतजीके साथ रहते थे; अतः श्रीभरतजीका और इनका चरित्र साथ ही चलता है। इसलिये रामायणमे इनके विषयमें कोई विशेष बात अलग नहीं कही गयी है। इनके गुण और चरित्रोंका अनुमान भरतके व्यवहारसे लगा लेना चाहिये।

बालकाण्डमें इनके प्रेमका वर्णन करते हुए कहा है—

अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः॥

(वा० रा० १। १८। ३२)

'जैसे लक्ष्मण हाथमें धनुष लेकर श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पीछे चलते थे, उसी तरह ही वे लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न भी भरतके साथ रहते थे।'

जनकपुरमें सब भाइयोंके विवाहका कार्य सम्पन्न होनेके बाद वहाँसे लौटकर अयोध्या आनेके कुछ ही दिन पश्चात् भरतजीको

उनके मामा युधाजित् अपने देश ले जाने लगे तो शत्रुघ्नजी भी उनके साथ ही ननिहाल गये। उस समय भरतजीके प्रेममें उन्होंने माता-पिता, भाई-बन्धु और नवविवाहिता स्त्रीका कुछ भी मोह न करके भाई भरतके साथ रहना ही अपना परम कर्तव्य समझा। फिर अयोध्यासे बुलावा जानेपर भरतजीके साथ लौट आये। अयोध्या पहुँचनेपर माता कैकेयीके द्वारा पिताके मरण तथा लक्ष्मण और सीताके साथ श्रीरामके वनवासका समाचार सुनकर इनको भी बड़ा भारी दुःख हुआ। भाई लक्ष्मणके शौर्यसे आप परिचित थे, अतः इन्होंने शोकपूर्ण हृदयसे बड़े आश्चर्यके साथ भरतजीसे कहा—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्॥
बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥

(वा० रा० २। ७८। २-३)

'आर्य! जो दुःखके समय आत्मीय व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या, समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं, वे ही महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी पत्नीके साथ वनमें भेज दिये गये (यह कितने दुःखकी बात है)। जो भाई लक्ष्मणजी बड़े ही बलवान् और पराक्रमी भी हैं, उन्होंने पिता-माताका निग्रह करके भी श्रीरामको इस संकटसे क्यों नहीं मुक्त कर दिया।'

इस प्रकार बातें हो रही थीं, श्रीशत्रुघ्नजी दुःख और क्रोधमें भरे थे, उसी समय राम-विरह-व्याकुल एक द्वारपालने सूचना दी कि 'राजकुमार! जिस क्रूरा पापिनी मन्थराके षड्यन्त्रसे श्रीरामचन्द्र

वन भेजे गये हैं, वह वस्त्राभूषणोंसे सज-धजकर खड़ी है।' यह सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध आया। वे मन्थराकी चोटी पकड़कर उसे आँगनमें घसीटने लगे। यह देखकर कुब्जाकी अन्य सहेलियोंने सोचा कि दयामयी कौशल्याकी शरण गये बिना शत्रुघ्न हमें भी नहीं छोड़ेंगे। अतः वे तुरंत ही दौड़कर कौसल्याजीके पास चली गयीं। कैकेयी उसे छुड़ानेके लिये आयीं तो शत्रुघ्नने उन्हें भी फटकार दिया। आखिर भरतने आकर शत्रुघ्नको समझाया कि स्त्रीजाति अवध्य मानी गयी है और यह भी कहा कि—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥
(वा० रा० २। ७८। २३)

'भाई! यदि कहीं कुबड़ी तुम्हारे हाथसे मारी गयी तो इस घटनाको जानते ही धर्मात्मा श्रीराम तुमसे और मुझसे भी निश्चय ही बोलना छोड़ देंगे।'

भरतकी इस बातको सुनकर शत्रुघ्नने कुब्जाको मूर्छित अवस्थामें ही छोड़ दिया।

इस प्रसङ्गमें समझनेकी पहली बात तो यह है कि श्रीरामकी धर्मनीतिमें स्त्रीजातिका कितना आदर था, जिससे कि वे हर हालतमें अवध्य मानी जाती थीं। दूसरी यह कि शोकाकुल भरतने ऐसी परिस्थितिमें भी छोटे भाईको समझाकर अधर्मसे रोका। तीसरी यह कि क्रोधातुर होनेपर भी शत्रुघ्नने तुरंत ही बड़े भाईकी बात मान ली। इसके बाद श्रीरामको लौटानेके लिये वनमें जाने लगे तो शत्रुघ्न भी साथ गये। चित्रकूटके पास पहुँचकर भरतकी आज्ञासे

श्रीरामकी पर्णकुटी ढूँढ़ने लगे। जब भरतजी श्रीरामको देखकर उनकी ओर दौड़े, तब रामदर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी उनके पीछे-पीछे पहुँचे। वहाँ कविने कहा है—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥

(वा० रा० २। ९९। ४०)

शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंकी वन्दना की। उन दोनोंको हृदयसे लगाकर श्रीराम भी आँसू बहाने लगे।' उसके बाद शत्रुघ्न भाई लक्ष्मण और सीताजीसे भी बड़े प्रेमसे मिले।

सब लोग इकट्ठे हुए, बातचीत आरम्भ हुई। वहाँ श्रीराम और भरतके संवादमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नका कोई काम ही नहीं था। शत्रुघ्नजीने तो अपना जीवन रामसेवक श्रीभरतजीको अर्पण कर रक्खा था, अतः उनके विषयमें जो कुछ कहना होता वह स्वयं भरत ही कह देते।

पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटते समय दोनों भाई फिर श्रीराम-की प्रदक्षिणा और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे मिले। लक्ष्मणकी भाँति शत्रुघ्नका भी स्वभाव तेज था। कैकेयीके प्रति इनके मनमें रोष था। श्रीराम इस बातको जानते थे। इस कारण विदा करते समय श्रीरामने शत्रुघ्नको वात्सल्य-भावसे शिक्षा देते हुए कहा—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।

(वा० रा० २। ११२। २७-२८)

'रघुनन्दन शत्रुघ्न! निश्चय ही तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है, तुम माता कैकेयीकी सेवा करना, उनपर कभी क्रोध न करना।'

इससे भी पता चलता है कि शत्रुघ्नजीका श्रीराममें कितना प्रेम और भक्तिभाव था।

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतके साथ अयोध्या लौटकर बराबर उनके आज्ञानुसार राज्य और परिवारकी सेवा करते रहे। शत्रुघ्नजी हर हालतमें भरतके पास रहकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते थे। भरतजीके मनमें भी शत्रुघ्नपर बड़ा भरोसा था। इसी कारण वे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े कार्यके लिये शत्रुघ्नको ही आज्ञा देते थे।

इसके बाद श्रीरामके लौटकर आनेतक शत्रुघ्नजीके विषयमें वाल्मीकीय रामायणमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। श्रीहनुमान्‌जीद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके आनेका समाचार मिलनेपर भरतजीकी आज्ञासे शत्रुघ्नने ही श्रीरामकी अगवानीका और नगरको सजानेका तथा राजमार्ग और अन्य सब रास्तोंको ठीक करानेका प्रबन्ध किया। श्रीरामका राज्याभिषेक होनेके बाद भी आप श्रीभरतजीके साथ-साथ ही श्रीरामका सेवाकार्य किया करते थे। भाईके नाते श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नपर भरतजीका समान अधिकार होनेपर भी भरतजी अपना काम शत्रुघ्नसे ही करवाते थे।

सीता-वनवासके बाद एक दिन बहुत-से ऋषियोंने श्रीरामके पास आकर लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन किया। इसपर श्रीरामने उनको आश्वासन दिया और सभामें यह प्रस्ताव रक्खा कि लवणासुरको मारनेके लिये कौन जायगा? किसको आज्ञा दी जाय? भरतको या शत्रुघ्नको?' यह सुनकर भरतजीने कहा कि 'मुझे आज्ञा मिले, मैं लवणासुरको मार डालूँगा।' भरतकी बात सुनकर शत्रुघ्नजीने अपने आसनसे खड़े होकर श्रीरामको प्रणाम करके कहा—

कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दन।
आर्येण हि पुरा शून्या त्वयोध्या परिपालिता॥
सन्तापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति।
दुःखानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव॥
शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महायशाः॥
फलमूलाशनो भूत्वा जटी चीरधरस्तथा।
अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः॥
प्रेष्ये मयि स्थिते राजन्न भूयः क्लेशमाप्नुयात्।

(वा० रा० ७।६२।११-१५)

'रघुनाथजी! मझले भाई श्रीभरतजीने तो पहले आपके बहुत कार्य किये हैं। क्योंकि इन्होंने आपके वियोगका सन्ताप हृदयमें रखकर भी आपके न रहनेपर आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अयोध्याका पालन किया है। राजन्! महायशस्वी भरतजीने नन्दिग्राममें तृणकी शय्यापर शयन कर और फल-मूलका भोजन करके जटा और चीर धारण किये हुए आपके वियोगकालको व्यतीत किया है। इस प्रकारके दुःखोंका अनुभव करनेके अनन्तर इस समय मुझ दासके रहते हुए इनको पुनः यह लवणासुर-वधका परिश्रम नहीं मिलना चाहिये।' शत्रुघ्नजीके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम्।
राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे॥
निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे।
शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थश्च निवेशने॥

राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे ।
उत्तरं च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ॥
(वा० रा० ७ । ६२ । १६-१७, २०)

'भाई ! ऐसा ही हो, तुम्हीं मेरी आज्ञाका पालन करो । मैं मधुदैत्यके सुन्दर नगरपर तुम्हारा राज्याभिषेक करता हूँ । महाबाहो ! यदि तुम भरतको कष्ट देना नहीं चाहते तो अच्छी बात है, भरतको यहीं रहने दो । तुम भी बड़े विद्वान्, शूरवीर और नगर बसानेमें-समर्थ हो । यदि तुम्हें मेरी बातका पालन करना है तो धर्मपूर्वक वहाँके राज्यका शासन करो । वीर ! तुमको मेरी इस आज्ञाके विरुद्ध कोई उत्तर नहीं देना चाहिये ।' भगवान् श्रीरामके यह वचन सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ी लज्जा हुई और वे मन्द स्वरमें बोले—

अधर्मं विद्म काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर ।
कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते ॥
अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ ।
तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ॥
त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम् ।
नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति ॥
व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि लवणं मृधे ।
तस्यैवं मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥
उत्तरं न हि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥
सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामीति चोत्तरम् ।
(वा० रा० ७ । ६३ । २-८)

राजन् ! बड़े भाई भरतजीके रहते हुए मुझ छोटेका राज्याभिषेक कैसे हो सकता है ? इस कार्यमें मुझे अधर्म माल्रूम होता है। इधर मुझे आपकी आज्ञाका पालन भी अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पुरुषोत्तम ! महाभाग ! आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी घोर पाप है। वीर ! यही बात मैंने आपसे और वेद-शास्त्रोंसे भी सुन रक्खी है। अतः पूज्य भाई भरतजीके लवणासुरको मारनेकी बात स्वीकार कर लेनेके बाद फिर मुझे कोई उत्तर नहीं देना चाहिये था। मैंने यह बहुत ही खोटे दुर्वचन कह डाले कि लवणासुरको मैं मारूँगा।' पुरुषश्रेष्ठ ! इस दुरुक्तिका ही फल यह राज्याभिषेकरूप दुर्गति मुझे मिली है। बड़े भाईकी आज्ञा हो जानेपर फिर उत्तर नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसा करना अधर्मयुक्त और परलोकके विरुद्ध है। इसलिये रघुवर ! अब मैं दुबारा कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा [मैं आपके इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ]।'

कैसा सुन्दर त्याग है ! श्रीरामके वियोगमें राज्यप्राप्तिको आप दुर्गति समझते हैं। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है, साधकोंको इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये।

इसके बाद भी श्रीशत्रुघ्नजीने लवणासुरपर चढ़ाई की। उस समय श्रीरामने शत्रुघ्नको लवणासुरको मारनेकी युक्ति बतलायी तथा रास्तेमें खर्चके लिये बहुत-सा धन और बड़ी भारी सेना उनके साथ देकर उन्हें विदा किया। रास्तेमें जाते समय शत्रुघ्नजी एक रात श्रीवाल्मीकिके आश्रममें ठहरे। उसी रात्रिमें श्रीसीताजीसे कुश-लव—इन दो यमज (जोड़ले) पुत्रोंका जन्म हुआ था। इसलिये वह रात्रि भी श्रीशत्रुघ्नजीके लिये बड़ी ही आनन्ददायिनी हुई।

इसके बाद शत्रुघ्नजी वहाँसे चलकर रास्तेमें सात दिन ठहरते-ठहरते यमुना-किनारे च्यवन ऋषिके आश्रममें पहुँचे ।

वहाँ च्यवन ऋषिसे लवणासुरकी दिनचर्या और उसके बल-पराक्रमकी जानकारी प्राप्त की । फिर जब लवणासुर अपने घरसे आहारके लिये वनमें निकल गया, तब उसके लौटनेसे पहले ही शत्रुघ्नजीने जाकर उसके नगरका द्वार रोक लिया । शत्रुघ्नको देखकर लवणासुर कहने लगा कि 'इससे क्या होगा ? नराधम ! इस तरहके हजारों मनुष्योंको तो मै रोज खाता हूँ ।' इसपर शत्रुघ्नजीने अपना परिचय देते हुए कहा कि 'मै तुम्हारे साथ युद्ध करना चाहता हूँ । इसके बाद दोनोंका आपसमें घोर युद्ध हुआ । अन्तमें शत्रुघ्नजीने कानतक धनुष तानकर एक दिव्य बाण उसकी छातीमें मारा । वह छातीको छेदकर पातालमें प्रवेश कर गया और फिर वापस आकर शत्रुघ्नजीके तरकसमें स्थित हो गया । देवता और महर्षिगण शत्रुघ्नजीकी प्रशंसा करने लगे तथा आकाशसे जय-जयकारकी ध्वनि और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ।

इस प्रकार लवणासुरको मारकर तथा वहीं अच्छी तरह मधुरा-पुरी बसाकर उसके राज्यका प्रबन्ध करके बारह वर्षके बाद शत्रुघ्नजी श्रीरामका दर्शन करनेके लिये वहाँसे अयोध्याकी ओर लौटे । आते समय फिर शत्रुघ्नजी श्रीवाल्मीकि ऋषिके आश्रममें ही ठहरे । वहाँ उन्होंने मधुर स्वरमें गाये जाते हुए श्रीरामचरित्रको सुना । उसे सुनकर उनका हृदय करुणासे भर गया । वे रात्रिमें वहीं लेटकर श्रीरामके विषयमे ही विचार करते रहे । उनको नींद नहीं आयी । सवेरा होनेपर नित्यकर्मके बाद मुनिकी आज्ञा लेकर श्रीरामदर्शनकी

उत्कण्ठासे वे अयोध्याकी ओर चल पड़े। अयोध्या पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके महलमें आये; वहाँ इन्द्रके समान आसनपर विराजमान श्रीरामको उन्होंने प्रणाम किया और कहा कि 'भगवन्! आपके आज्ञानुसार मै लवणासुरको मारकर वहाँ नगर बसा आया हूँ।'

द्वादशैतानि वर्षाणि त्वां विना रघुनन्दन।
नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप॥
स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम।
मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम्॥
(वा० रा० ७। ७२। ११-१२)

'महाराज रघुनाथजी! ये बारह वर्ष मैंने आपके वियोगमें बड़ी कठिनतासे बिताये है। इसलिये अब मैं आपके विना वहाँ निवास करना नहीं चाहता। अतएव महापराक्रमी श्रीरामजी! आप मुझपर ऐसी कृपा करें, जिससे मातृविहीन बालककी भाँति मैं आपसे अलग होकर बहुत दिनतक कहीं न रहूँ।'

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगाया और कहा—'वीर! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये, यह क्षत्रिय स्वभावके अनुरूप नहीं है। तुम्हें क्षात्रधर्मके अनुसार प्रजाका पालन करना चाहिये। समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये आ जाया करो।' इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे शत्रुघ्नजीने दीन वाणीसे उनकी बात स्वीकार कर ली। फिर भरत और लक्ष्मणसे मिलकर और सबको प्रणाम करके वे मथुरा लौट गये।

इसके बाद जब भगवान् परमधाम पधारने लगे; तब फिर

शत्रुघ्नको बुलाया गया। तब शत्रुघ्नजी अपने पुत्रोंका राज्याभिषेक करके अयोध्यामें पहुँचे और श्रीरामके पास आकर उनको प्रणाम करके गद्गदवाणीसे कहने लगे—

कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम्॥
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम्।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः॥
(वा० रा० ७। १०८। १४-१५)

'महाराज रघुनाथजी! मै अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक करके आपके साथ चलनेका निश्चय करके आया हूँ। वीर! अब आप मुझे कोई दूसरी आज्ञा न दें; क्योंकि किसीके भी द्वारा और विशेषत: मेरे-जैसे अनुयायीके द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो—यह मैं नहीं चाहता। अभिप्राय यह है कि मैंने आजतक आपकी आज्ञाका कभी त्याग नहीं किया है। अतः अब भी वैसा न करना पड़े, इसकी आप ही रक्षा करें।'

भगवान् श्रीरामने शत्रुघ्नजीकी प्रार्थना स्वीकार की और श्रीशत्रुघ्नजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ-ही-साथ परमधाम पधार गये।

यह श्रीशत्रुघ्नजीका छोटा-सा जीवन-चरित्र केवल वाल्मीकीय रामायणके आधारपर लिखा गया है, इसमें दूसरे किसी रामायणसे या पुराणोंसे कोई बात नहीं ली गयी है। इस कारण सम्भव है कि उनके प्रेम और गुणोंकी समस्त बातें पाठकोंके सामने न आवें; परन्तु इसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके सिवा मैं कर ही क्या सकता हूँ।



आदर्श भक्त हनुमान्

श्रीहनुमान्‌जी भगवान् श्रीरामके सर्वोत्तम दास-भक्त हैं। आपका जन्म वायुदेवके अंशसे और माता अञ्जनीके गर्भसे हुआ था। श्रीहनुमान्‌जी बालब्रह्मचारी, महावीर, अतिशय बलवान्, बड़े बुद्धिमान्, चतुरशिरोमणि, विद्वान्, सेवाधर्मके आचार्य, सर्वथा निर्भय, सत्यवादी, स्वामिभक्त, भगवान्‌के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावको भली प्रकार जाननेवाले, महाविरक्त-सिद्ध, परम प्रेमी भक्त और सदाचारी महात्मा हैं। आप युद्धविद्यामें बड़े ही निपुण, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ तथा भगवान्‌के नाम, गुण, स्वरूप और लीलाके बड़े ही रसिक हैं। कहा जाता है कि अब भी जहाँ श्रीरामकी कथा या कीर्तन होता है, वहाँ श्रीहनुमान्‌जी किसी-न-किसी वेषमें उपस्थित रहते ही हैं। श्रद्धा न होनेके कारण लोग उन्हें पहचान नहीं पाते।

श्रीहनुमान्‌जीके गुण अपार हैं। भगवान् और उनके भक्तोंके गुणोंका वर्णन कोई भी मनुष्य कैसे कर सकता है। इस विषयमें जो कुछ भी लिखा जाय, वह बहुत ही थोड़ा है। यहाँ संक्षेपमें श्रीहनुमान्‌जीके चरित्रोंद्वारा उनके गुणोंका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

पहले-पहल जब पम्पा-सरोवरपर श्रीराम और लक्ष्मणसे श्रीहनुमान्‌जी मिले हैं, वह प्रसंग देखनेसे मालूम होता है कि श्रीहनुमान्‌जीमें विनय, विद्वत्ता, चतुरता, दीनता, प्रेम और श्रद्धा आदि गुण बड़े ही विलक्षण हैं।

अपने मन्त्रियोंके सहित ऋष्यमूक-पर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवकी दृष्टि पम्पा-सरोवरकी ओर जाती है, तो वे देखते हैं कि हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए बड़े सुन्दर, विशालबाहु महापराक्रमी दो वीर पुरुष इस ओर आ रहे हैं। उन्हें देखते ही सुग्रीव भयभीत होकर श्रीहनुमान्‌जीसे कहते हैं कि 'हनुमान्! तुम जाकर इनकी परीक्षा तो करो। यदि ये वालीके भेजे हुए हों तो मुझे संकेतसे समझा देना, जिससे मैं इस पर्वतको छोड़कर तुरंत ही भाग जाऊँ।'

सुग्रीवकी आज्ञा पाकर आप ब्रह्मचारीका रूप धरकर वहाँ जाते हैं और श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके उनसे प्रश्न करते हैं। मानस-रामायणमें श्रीतुलसीदासजी उनके प्रश्नका यों वर्णन करते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

× × × ×

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

अध्यात्मरामायणमें भी करीब-करीब ऐसा ही वर्णन है। इसके

सिवा वहाँ श्रीरामचन्द्रजी भाई श्रीलक्ष्मणसे हनुमान्‌जीकी विद्वत्ताकी सराहना करते हुए कहते हैं—

'लक्ष्मण ! देखो, यह ब्रह्मचारीके वेषमें कैसा सुन्दर भाषण करता है, अवश्य ही इसने सम्पूर्ण शब्द-शास्त्र बहुत प्रकारसे पढ़ा है। इसने इतनी बातें कहीं; किन्तु इसके बोलनेमें कहीं कोई भी अशुद्धि नहीं आयी।'

वाल्मीकीय रामायणमें तो श्रीरामने यहाँतक कहा है कि 'इसने अवश्य ही सब वेदोंका अभ्यास किया है, नहीं तो यह इस प्रकारका भाषण कैसे कर सकता!' इसके सिवा और भी बहुत प्रकारसे श्रीहनुमान्‌जीके वचनोंकी सराहना करते हुए वे अन्तमें कहते हैं कि जिस राजाके पास ऐसे बुद्धिमान् दूत हों उसके समस्त कार्य दूतकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाया करते हैं।

रामचरितमानसमें आगेका वर्णन बड़ा ही प्रेमपूर्ण है—

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपना समस्त परिचय देकर श्रीहनुमान्‌जीसे पूछते हैं कि 'ब्राह्मण ! बतलाइये, आप कौन हैं?' यह सुनते ही हनुमान्‌जी श्रीरामको भलीभाँति पहचानकर तुरंत ही उनके चरणोंमें गिर पड़ते हैं, उनका शरीर पुलकित हो जाता है, मुखसे बोला नहीं जाता, वे टकटकी लगाकर भगवान्‌की रूप-माधुरी और विचित्र वेषको निहारने लगते हैं। कैसा अलौकिक प्रेम है ! फिर धैर्य धारण करके भगवान्‌से कहते हैं—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तव माया बस फिरउँ भुलाना। ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

एकु मैं मंद मोहवस कुटिल हृदय अग्यान ।
पुनि प्रभु मोहि विसारेउ दीनबंधु भगवान ॥

जदपि नाथ वहु अवगुन मोरें । सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ॥

कितना प्रेम और दैन्यभाव है ! इसके बाद विनयपूर्वक सुग्रीवकी परिस्थिति वतलाकर दोनों भाइयोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर वे सुग्रीवके पास ले जाते है । वहाँ दोनों ओरकी सब बातें सुनाकर अग्निदेवकी साक्षीमें श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रता करा देते हैं । वालीका वध करके भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मणके सहित प्रवर्षण-पर्वतपर निवास करके वर्षा-ऋतुका समय व्यनीत करते हैं । उधर सुग्रीव राज्य, ऐश्वर्य और स्त्री आदिके मिल जानेसे भोगोंमें फँसकर भगवान्‌के कार्यको भूल जाते हैं । यह देखकर श्रीहनुमान्‌जी राजनीतिके अनुसार सुग्रीवको भगवान्‌के कार्यकी स्मृति कराते हैं और उनकी आज्ञा लेकर वानरोंको बुलानेके लिये देश-देशान्तरोंमें दूत भेजते हैं । कैसी बुद्धिमानी है !

इसके बाद जब श्रीसीताजीकी खोजके लिये सब दिशाओंमें वानरोंको भेजनेकी बातचीत हो रही थी, उस समयका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें देखनेसे मालूम होता है कि सुग्रीवका श्रीहनुमान्‌जीपर कितना भरोसा और विश्वास था तथा भगवान् श्रीरामको भी उनकी कार्यकुशलतापर कितना विश्वास था । वहाँ श्रीरामके सामने ही सुग्रीव हनुमान्‌से कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव ॥

सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः ।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे ।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥

(किष्किन्धा० ४४ । ३—७)

'कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारी गतिका अवरोध न पृथ्वीमें, न अन्तरिक्षमें, न आकाशमें और न देवलोकमें अथवा जलमें ही देखा जाता है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य इनके सहित उन-उनके समस्त लोकोंका समुद्र और पर्वतोंसहित तुम्हें भलीभाँति ज्ञान है । महाकपे ! तुम्हारी गति, वेग, तेज और फुर्ती—तुम्हारे महान् बलशाली पिता वायुके समान हैं । वीर ! इस भूमण्डलपर कोई भी प्राणी तेजमें तुम्हारी समानता करनेवाला न कभी हुआ और न है। अतः जिस प्रकार सीता मिल सके, वह उपाय तुम्हीं सोचकर बताओ। हनुमन् ! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो; बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण और नीतिपूर्ण बर्ताव—ये सब एक साथ तुममें पाये जाते है ।'

इस प्रकार सुग्रीवकी बातें सुनकर भगवान् श्रीराम हनुमान्-जीकी ओर देखकर अपना कार्य सिद्ध हुआ ही समझने लगे। उन्होंने मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अँगूठी हनुमान्जीके हाथमें देकर कहा—

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः ।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥

(किष्किन्धा० ४४ । १३-१४)

'कपिश्रेष्ठ ! इस चिह्नके द्वारा जनकनन्दिनी सीताको यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पाससे ही गये हो। तब वह निर्भय होकर तुम्हारी ओर देख सकेगी । वीरवर ! तुम्हारा उद्योग, धैर्य और पराक्रम तथा सुग्रीवका संदेश मुझे इस बातकी सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा इस कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी ।'

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी प्रकार श्रीरामने हनुमान्‌जीके गुणोंकी बड़ाई की है । वहाँ निशानीके रूपमें अपनी मुद्रिका देकर भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीसे कहते हैं—

अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम ।
जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव ॥

(४ । ६ । २९)

'कपिश्रेष्ठ ! इस कार्यमें केवल तुम्हीं समर्थ हो । मैं तुम्हारा समस्त पराक्रम भलीभाँति जानता हूँ । अच्छा, जाओ; तुम्हारा मार्ग कल्याणकारक हो ।'

इसके बाद जब जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरोंके साथ हनुमान्‌जी श्रीसीताजीकी खोज करते-करते समुद्रके किनारे पहुँचते हैं और श्रीसीताका अनुसन्धान न मिलनेके कारण शोकाकुल होकर सब वहीं अनशन-व्रत लेकर बैठ जाते हैं, तब गृध्रराज सम्पातीसे

बातचीत होनेपर उन्हें यह पता लगता है कि सौ योजन समुद्रके पार लङ्कापुरीमें राक्षसराज रावण रहता है, वहाँ अपनी अशोक-वाटिकामें उसने सीताको छिपा रक्खा है। तब सब वानर एक जगह बैठकर परस्पर समुद्र लाँघनेका विचार करने लगे। अङ्गदके पूछनेपर सभीने अपनी-अपनी सामर्थ्यका परिचय दिया; परन्तु श्रीहनुमान्‌जी चुप साधे बैठे ही रहे। कैसी निरभिमानता है! यह प्रसङ्ग श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा ही रोचक और विस्तृत है। वहाँ जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमान्‌जीकी बुद्धि, बल, तेज, पराक्रम, विद्या और वीरताका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे कहते हैं—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि॥

... ...

रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥

... ...

गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम्॥

× × ×

पक्षयोर्यद्बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥

(किष्किन्धा० ६६। २-७)

'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा वानर-जगत्‌के अद्वितीय वीर हनुमान्! तुम कैसे एकान्तमें आकर चुप साधे बैठे हो? कुछ

बोलते क्यों नहीं ? तुम तो तेज और बलमें श्रीराम और लक्ष्मणके समान हो। गमनशक्तिमें सम्पूर्ण पक्षियोंमें श्रेष्ठ विनतापुत्र महाबली गरुड़के समान विख्यात हो। उनकी पाँखोंमें जो बल और तेज तथा पराक्रम है, वही तुम्हारी इन भुजाओंमें भी है। वानरश्रेष्ठ! तुम्हारे अंदर समस्त प्राणियोंसे बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य हैं; फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते ?'

इसके बाद जाम्बवान् उनके जन्मकी कथा सुनाते हैं तथा बाल्यावस्थाके पराक्रम और वरदानकी बात कहकर उनके बलकी स्मृति दिलाते हुए अन्तमें कहते हैं—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव॥

(किष्किन्धा० ६६। ३६-३७)

'वानरश्रेष्ठ हनुमान्! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ। जो तुम्हारी गति है, वह सभी प्राणियोंसे बढ़कर है। सभी वानर चिन्तामें पड़े हैं और तुम इनकी उपेक्षा करते हो, यह क्या बात है ? तुम्हारा वेग महान् है। जैसे भगवान् विष्णुने (पृथ्वीको नापनेके लिये) तीन डगे भरी थीं उसी प्रकार तुम छलाँग मारकर समुद्रके उस पार चले जाओ।' इतना सुनते ही श्रीहनुमान्जी तुरंत ही समुद्र लाँघनेके लिये अपना शरीर बढ़ाने लगे।

रामचरितमानसमें भी इसी आशयका वर्णन है। वहाँ अङ्गद-को धैर्य देनेके बाद जाम्बवान् हनुमान्‌जीसे कहते हैं—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी तरहका वर्णन है। इसके सिवा पर्वताकार रूप धारण करनेके अनन्तर वहाँ श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—

लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ॥
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना ॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥
(४।९।२२-२४)

'वानरो! मैं समुद्रको लाँघकर लङ्काको भस्म कर डालूँगा और रावणको कुलसहित मारकर श्रीजनकनन्दिनीको ले आऊँगा। अथवा कहो तो रावणके गलेमें रस्सी डालकर तथा लङ्काको त्रिकूट-पर्वतसहित बायें हाथपर उठाकर भगवान् रामके आगे ला रक्खूँ? या शुभलक्षणा श्रीजानकीजीको देखकर ही चला आऊँ?'

कितना आत्मबल है! इसपर जाम्बवान्‌ने कहा—'वीर!

तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा श्रीजानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ।'

समुद्रको लाँघनेके लिये तैयार होकर आपने वानरोंसे जो वचन कहे हैं, उनसे यह पता चलता है कि आपका श्रीरामनामपर बड़ा ही दृढ़ विश्वास था। आप भगवान् श्रीरामके गुण, प्रभाव और तत्त्वको भलीभाँति जानते थे तथा श्रीराममें आपका अविचल प्रेम था। अध्यात्मरामायणमें यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

....

पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महावाणमिवाखिला।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत् स्मरन् ॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम्।
(५।१।२-६)

'समस्त वानरो! तुम सभी लोग भगवान् रामद्वारा छोड़े हुए अमोघ बाणकी भाँति आकाशमार्गसे जाते हुए मुझे देखो। मैं आज ही रामप्रिया जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके दर्शन करूँगा। निश्चय ही मैं कृतकृत्य हो चुका, कृतकृत्य हो चुका; अब मैं फिर श्रीरघुनाथजी-का दर्शन करूँगा। प्राण निकलनेके समय जिनके नामका एक बार स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार संसार-सागरको पारकर उनके

परमधामको चला जाता है, उन्हीं भगवान् श्रीरामका दूत, उनके हाथकी मुद्रिका लिये हुए, हृदयमें उन्हींका ध्यान करता हुआ मैं यदि इस छोटे-से समुद्रको लाँघ जाऊँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।'

समुद्र लाँघनेके लिये श्रीहनुमान्‌जीने जो भयानक रूप धारण किया था, उसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें विस्तारपूर्वक है। यहाँ उसका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है। वहाँ लिखा है—

....

ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥
निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम् ।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः ।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥
तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥
(सुन्दर० १ । १०, ११, १२, ४६)

'जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन समुद्र बढ़ता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये हनुमान् बढ़ने लगे। समुद्र लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजाओं एवं चरणोंसे उस पर्वतको दबाया तो वह हनुमान्‌जीके द्वारा ताडित हुआ पर्वत तुरंत काँप उठा और मुहूर्तभर काँपता रहा। उसपर उगे हुए वृक्षोंके समस्त फूल झड़ गये। जब उन्होंने उछाल मारी, तब पर्वतपर उगे हुए साल तथा दूसरे

वृक्ष इधर-उधर गिर गये। उनकी जाँघोंके वेगसे टूटे हुए वृक्ष इस प्रकार उनके पीछे चले जैसे राजाके पीछे सेना चलती है।'

इसके सिवा वहाँपर श्रीहनुमान्‌जीके स्वरूपका मनोहर भाषामें बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। वहाँ लिखा है कि उस समय श्रीहनुमान्‌जीकी दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी परछाईं वेगके कारण समुद्रमें बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। वे परम तेजस्वी, महाकाय कपिवर आकाशमें आलम्बनहीन पंखवाले पर्वतकी भाँति जान पड़ते थे। इससे उनकी लम्बाई-चौड़ाईके विस्तार-का कुछ पता चलता है।

यह देखकर मैनाक-पर्वत उनसे विश्राम लेनेके लिये अनेक प्रकारसे प्रार्थना करता है, परन्तु भगवान् श्रीरामका कार्य पूरा किये बिना आपको विश्राम कहाँ! आप उसे केवल स्पर्शमात्र करके ही आगे बढ़ जाते हैं।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥
हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

सुरसाको अपने बुद्धि-बलका परिचय देकर आगे जाते-जाते जब समुद्रपर आपकी दृष्टि पड़ती है, तब क्या देखते हैं कि एक विशालकाय प्राणी समुद्रके जलपर पड़ा हुआ है। उस विकरालवदन

राक्षसीको देखकर वे सोचने लगे—कपिराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्भुत जीवकी बात कही थी, वह निःसन्देह यही है। ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने शरीरको बढ़ाया। हनुमान्‌जीके शरीरको बढ़ता देखकर सिंहिका भी अपना भयानक मुख फैलाकर हनुमान्‌जीकी ओर दौड़ी। तब हनुमान्‌जी छोटा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये और अपने नखोंसे उसके मर्मस्थलोंको फाड़ डाला। इस प्रकार कुशलता और धैर्यपूर्वक उसे मारकर फिर पहलेकी भाँति आगे बढ़ गये। कैसा विचित्र बुद्धि-कौशल, धैर्य और साहस है।

इस प्रकार समुद्रको पार करके आप त्रिकूट पर्वतपर जा उतरे। बिना विश्राम सौ योजनके समुद्रको लाँघनेपर भी आपके शरीरमें किसी प्रकारकी थकावट नहीं आयी। वहाँसे उन्होंने भलीभाँति लङ्काका निरीक्षण किया। फिर लङ्काके समीप जाकर उसके भीतर प्रवेश करनेके विषयमें खूब विचार करके अन्तमें यह निश्चय किया कि रात्रिके समय छोटा रूप बनाकर इसमें प्रवेश करना ठीक होगा। इसके बाद सन्ध्याकालमें जब आप छोटा-सा रूप धारण करके लङ्कापुरीमें प्रवेश करने लगे, तब द्वारपर लङ्कापुरीकी अधिष्ठात्री लङ्किनी राक्षसीने उनको देख लिया। उसने श्रीहनुमान्‌जीको डाँट-डपटकर जब उनको लात मारी, तब आपने अपने बायें हाथका एक मुक्का उसके शरीरपर मारा। उसके लगते ही वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। फिर उठकर ब्रह्माजीकी बातका स्मरण करके हनुमान्‌जीकी स्तुति करने लगी और अन्तमें बोली—

धन्याहमप्यद्य चिराय राघव-
स्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचिनी ।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम
प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥
(अध्यात्म० ५ । १ । ५८)

'आज मैं धन्य हूँ जो चिरकालके बाद मुझे संसार-बन्धनका नाश करनेवाली रघुनाथजीकी स्मृति प्राप्त हुई तथा उनके भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग भी मिला । वे दशरथपुत्र श्रीराम सदा ही मेरे हृदयमें प्रसन्नतापूर्वक निवास करें ।' रामचरितमानसमें यह प्रसंग इस प्रकार है—

हनुमान्‌जीके प्रहारसे व्याकुल होकर गिर पड़नेके बाद सावधान होकर लंकिनी कहती है—

तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

इसके बाद हनुमान्‌जी छोटा-सा रूप धारण कर लंकापुरीमें सीताकी खोज करते-करते बहुत-से राक्षसोंके घरमें घूम-फिरकर रावणके महलमें जाते हैं । वहाँ रावणके महलकी विचित्र रचना देखते-देखते पुष्पक-विमानको आश्चर्ययुक्त होकर देखते हैं । इसके बाद जिस समय उन्होंने सीताको पहचाननेके लिये रावणके महलमें रावणकी स्त्रियोंको देखकर अपने मनकी स्थितिका वर्णन किया है, उसे देखनेसे यह पता चलता है कि आपकी ब्रह्मचर्य-निष्ठा कितनी

ऊँची थी, परस्त्री-दर्शनको आप कितना बुरा समझते थे, आपका कितना सुन्दर विशुद्ध भाव था। वाल्मीकाय रामायणकी कथा है कि जब हनुमान्‌जीने रावणके महलका कोना-कोना छान डाला, परन्तु उन्हें जानकी कहीं दिखायी नहीं पड़ी, उस समय सीताको खोजनेके उद्देश्यसे स्त्रियोंको देखते-देखते उनके मनमें धर्म-भयसे शङ्का हुई। वे सोचने लगे, इस प्रकार अन्तःपुरमें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना तो मेरे धर्मको एकदम नष्ट कर देगा; परन्तु इन परस्त्रियोंको मैंने कामबुद्धिसे नहीं देखा है। इस दृश्यसे मेरे मनमें तनिक भी विकार नहीं हुआ। समस्त इन्द्रियोंकी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियोंका कारण मन ही है और मेरा मन सर्वथा निर्विकार है। इसके सिवा सीताजीको दूसरे तरीकेसे मैं खोज भी नहीं सकता। स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय स्त्रियोंके ही बीचमें ढूँढ़ना पड़ता है'—इत्यादि। ऐसे सुन्दर विचार और ऐसा विशुद्ध भाव आपके ही उपयुक्त है।

साधकोंको इससे विशेष शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और विकट स्थितिमें भी अपने मनमें किसी प्रकारका भी विकार नहीं आने देना चाहिये। वाल्मीकीय रामायणमें सीताकी खोजका बड़ा ही विचित्र और विस्तृत वर्णन है। यहाँ उसमेंसे बहुत थोड़ेसे प्रसङ्गका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है।

रामचरितमानसमें लिखा है कि सीताको खोजनेके लिये लंका-में घूमते-घूमते हनुमान्‌जीकी दृष्टि एक सुन्दर भवनपर पड़ती है, जिसपर भगवान् श्रीरामके आयुध अङ्कित किये हुए हैं। तुलसीके पौधे उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। यह देखकर आप सोचने लगते हैं

कि यहाँ तो राक्षसोंका ही निवास है, यहाँ सज्जन पुरुष क्यों निवास करने लगे। उसी समय विभीषण जाग उठते हैं और बार-बार श्रीराम-नामका स्मरण करते हैं। यह देखकर हनुमान्‌जीने सोचा कि निःसन्देह यह कोई भगवान्‌का भक्त है, इससे जरूर पहचान करनी चाहिये। साधुसे कभी कार्यकी हानि नहीं हो सकती।

विप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥
तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

भगवान्‌के भक्तोंमें परस्पर स्वाभाविक प्रेम कैसा होना चाहिये, इसका यहाँ बडा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। विभीषण कहते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

तब हनुमान्‌जी कहते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

कितना सुन्दर दैन्यभाव, अतुलित विश्वास और अनन्य भगवत्प्रेम है। इसके बाद विभीषणसे सब खबर पाकर हनुमान्‌जी अशोक-वाटिकामें जाकर श्रीसीताजीको देखते हैं और मन-ही-मन उनको प्रणाम करते है।

अशोकवाटिकामें जाकर श्रीसीताजीसे मिलनेके लिये हनुमान्‌जीने कितनी बुद्धिमानी और युक्तियोंसे काम लिया है, इसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें बहुत विस्तृत है। वहाँ लिखा है कि बहुत तरहकी युक्तियाँ लगाकर सीताजीसे मिलनेका उपाय सोचते-सोचते अन्तमें हनुमान्‌जी बड़ी सावधानीके साथ एक सघन वृक्षके पत्तोंमें छिपकर बैठ जाते हैं। वहींसे सब ओर दृष्टि घुमाकर देखते हैं। देखते-देखते उनकी दृष्टि सीतापर पड़ती है। उसे देखकर बहुत-से चिह्नोंद्वारा अनुमान लगाकर यह निश्चय करते हैं कि यही जनकनन्दिनी सीता हैं। वहाँ उन्होंने सीताके रहन-सहन और स्वभावका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे सीताके गहनोंको देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि भगवान् श्रीरामने सीताजीके अङ्गोंमें जिन-जिन आभूषणोंकी चर्चा की थी, वे सभी इनके अङ्गोंमें दिखायी देते हैं। इनमें केवल वे ही नहीं दिखलायी दे रहे हैं, जो इन्होंने ऋष्यमूक-पर्वतपर गिरा दिये थे।

इसी प्रकार उनके रूप और गुणोंको देखकर बड़ी बुद्धिमानीसे उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि निःसन्देह यही सीता हैं। यह निश्चय हो जानेपर उनको श्रीसीताजीके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ और वे मन-ही-मन बहुत विलाप करने लगे।

इसके बाद सीतासे किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, किस

समय और कैसे मिलना चाहिये, किस प्रकार उन्हे विश्वास दिलाना चाहिये कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ—इस विषयपर भी आपने बड़ी विचारकुशलता प्रकट की है। ठीक उसी समय रावण बहुत-सी राक्षसियोंको साथ लेकर वहाँ पहुँच जाता है। वह सीताको अनेक प्रकारसे भय दिखलाकर अपने अधीन करनेकी चेष्टा करता है, पर सीता किसी तरह भी अपने निश्चयसे विचलित नहीं होतीं। अन्तमे रावण चला जाता है। तब उसके आज्ञानुसार राक्षसियाँ अनेक प्रकारसे सीताको भय दिखलाती हैं। उसी समय त्रिजटा नामकी राक्षसी अपने स्वप्नकी बात कहकर सीताको धैर्य देती है और उसकी बातें सुनकर वे घोर राक्षसियाँ भी शान्त हो जाती हैं। सीता विरहसे व्याकुल होकर विलाप करने लग जाती हैं।

तब हनुमानूजी सीतासे मिलनेका उपयुक्त मौका देखकर अपने पूर्वनिश्चित विचारके अनुसार श्रीरामकी कथाका वर्णन करने लग जाते हैं। श्रीरघुनाथजीका आद्योपान्त समस्त चरित्र सुनकर सीताको बड़ा विस्मय हुआ। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि अन्तमें उन्होंने सोचा कि यह स्वप्न या भ्रम तो नहीं है। ऐसा विचार करके वे कहने लगीं—

येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः॥
(५।३।१८)

'जिन्होंने मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले वचन सुनाये, वे प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों।'

ये वचन सुनकर आप माता सीताके सामने बड़ी विनयके

साथ खड़े हो जाते हैं और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हैं। अकस्मात् एक वानरको अपने सामने खड़ा देखकर सीताके मनमें यह शङ्का होती है कि कहीं रावण तो मुझे छलनेके लिये नहीं आ गया है। यह सोचकर वे नीचेकी ओर मुख किये हुए ही बैठी रहती हैं। रामचरितमानसमें उस समय श्रीहनुमान्‌जीके वचन इस प्रकार हैं—

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना निधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

इसके बाद श्रीजानकीके पूछनेपर उन्होंने जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामकी मित्रता हुई, वह सारी कथा विस्तारपूर्वक सुना दी तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंका एवं उनके गुण और स्वभावका भी वर्णन किया। ये सब बातें सुनकर जानकीजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसङ्गका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा विस्तृत और रोचक है।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही संक्षेपमें इस प्रकार कहा है—

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥
हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥

इसके बाद महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जीने सीताजीको भगवान् श्रीरामकी दी हुई अँगूठी दी, जिसे लेकर वे इतनी प्रसन्न हुईं, मानो स्वयं भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों।

उस समय वे हनुमान्‌जीसे कहती हैं—

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपाल रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
सहज बानि सेवक सुख दायक । कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥
बचनु न आव नयन भरे बारी । अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥

इस प्रकार सीताको विरह-व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कहते हैं—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना । तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना ॥
रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥

इसके बाद बड़ी बुद्धिमानीके साथ श्रीरामके प्रेम और विरह-व्याकुलताकी बात श्रीहनुमान्‌जीने माता सीताको सुनायी । अन्तमें कहा कि श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥

इस प्रकार श्रीरामका प्रेमपूर्ण सन्देश सुनकर सीता प्रेममें मग्न हो गयीं, उन्हें अपने शरीरका भी भान नहीं रहा । तब हनुमान्‌जी फिर कहते हैं—

उर आनहु रघुपति प्रभुताई । सुनि मम बचन तजहु कदराई ॥
निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ॥

ये सब बातें सुनकर जब जानकीजीने यह कहा कि 'सब वानर तो तुम्हारे ही-जैसे होंगे। राक्षसगण बड़े भयानक और विकराल हैं। इन सबको तुमलोग कैसे जीत सकोगे, मेरे मनमें यह सन्देह हो रहा है।' यह सुनकर हनुमान्‌जीने अपना भयानक पर्वताकार रूप सीताको दिखलाकर अपना छिपा हुआ प्रभाव प्रकट कर दिया। उसे देखते ही सीताके मनमें विश्वास हो गया।

सीताने प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीको बहुत-से वरदान दिये। साथ ही यह भी कहा कि भगवान् श्रीराम तुमपर कृपा करेंगे। यह बात सुनते ही हनुमान्‌जी प्रेममें मग्न हो गये और बार-बार चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोले—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

इससे यह प्रकट होता है कि हनुमान्‌जीका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें कितना गूढ़ प्रेम है।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि बातों-ही-बातोंमें सीताजीने जब यह पूछा कि 'वानर-सेनाके सहित श्रीराम इस बड़े भारी समुद्रको पार कर यहाँ कैसे आ सकेंगे?' तब—

हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ।
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः॥
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम्॥

(सुन्दर० ३। ४७-४८)

'हनुमान्‌ने कहा—वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कंधोंपर चढ़कर आ जायँगे और समस्त सेनाके सहित वानरराज सुग्रीव भी आकाशमार्गसे क्षणमात्रमें ही इस महासमुद्रसे पार होकर आ जायँगे।'

इस प्रसङ्गसे भी श्रीहनुमान्‌जीके बल, वीर्य और साहसका परिचय मिलता है। इसके बाद माता सीतासे आज्ञा लेकर अशोक-वाटिकाके फल खाकर श्रीहनुमान्‌जीने अपने स्वामी श्रीरामका विशेष कार्य करनेकी इच्छासे अशोकवाटिकाके वृक्षोंको तहस-नहस करके समस्त वाटिकाको विध्वंस कर दिया। यह समाचार पाकर रावणने अपनी बड़ी भारी सेना और अक्षयकुमारको भेजा। उन सबके साथ हनुमान्‌जीका बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। बड़ी वीरता और युद्ध-कौशलसे उन्होंने अनायास ही जम्बुमाली, मन्त्रीके सात पुत्रों, पाँच सेनापतियों और अक्षयकुमारको मार डाला। इस युद्धके प्रसङ्गसे श्रीहनुमान्‌जीका अतुलित बल-पौरुष और युद्ध-कौशल स्पष्ट व्यक्त होता है। श्रीवाल्मीकीय रामायणमें इसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। श्रीहनुमान्‌जीके अतुलित पराक्रमका चित्र खींचते हुए वहाँ लिखा है—

तलेनाभ्यहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित्परंतपः।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत्॥
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि॥

(सुन्दर० ४५। १२-१३)

'हनुमान्‌जीने उन राक्षसोंमेंसे किसीको थप्पड़ मारकर गिरा दिया, कितनोंको पैरोंसे कुचल डाला, कइयोंका मुक्कोंसे काम तमाम कर दिया और बहुतोंको नखोंसे फाड़ डाला। कुछको छातीसे रगड़कर उनका कचूमर निकाल दिया तो किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर पीस डाला। कितने ही राक्षस तो उनकी भयानक गर्जनासे वहाँ पृथ्वीपर ही गिर पड़े'—इत्यादि।

जब बचे-खुचे राक्षसोंसे रावणको यह खबर मिली कि मन्त्रीके

सातों पुत्र और प्रधान-प्रधान प्रायः सभी राक्षस मारे गये, पाँचों सेनापति तथा अक्षयकुमार भी मारा गया, तब उसने इन्द्रजित्को उत्साहित करके हनुमान्जीको पकड़ लानेके लिये भेजा। मेघनाद और हनुमान्जीका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें जब उसने श्रीहनुमान्जीको बाँधनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तब ब्रह्माजीका सम्मान रखनेके लिये वे उससे बँध गये। उन्होंने सोचा कि राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मेरा लाभ ही है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। यह सोचकर वे निश्चेष्ट हो गये। तब राक्षसलोगोंने नाना प्रकारके रस्सोंसे हनुमान्जीको अच्छी प्रकार बाँध लिया। ऐसा करनेसे ब्रह्मास्त्रका प्रभाव नहीं रहा। इस प्रकार ब्रह्मास्त्रसे मुक्त हो जानेपर भी परम चतुर हनुमान्जीने ऐसा बर्ताव किया मानो इस बातको वे जानते ही न हों।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि इसके बाद हनुमान्जी रावणकी सभामें लाये गये, वहाँ पहुँचकर उन्होंने समस्त सभाके बीचमें बड़े सज-धजके साथ राजसिंहासनपर बैठे हुए रावणको देखा। हनुमान्जीको देखकर रावणको मन-ही-मन बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि यह भयंकर वानर कौन है, क्या साक्षात् शिवजीके गण भगवान् नन्दीश्वर ही तो वानरका रूप धारण कर नहीं आ गये हैं। इस प्रकार बहुत-सी तर्कणा करनेके बाद रावणने प्रहस्तसे कहा—

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एव वानरः।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात्॥
(५।४।५

'प्रहस्त ! इस वानरसे पूछो, यह यहाँ क्यों आया है ? यहाँ इसका क्या काम है ? यह आया कहाँसे है ? तथा इसने मेरा समस्त वगीचा क्यों नष्ट कर डाला ? और मेरे राक्षस वीरोंको बलात्कारसे क्यों मार डाला ?'

प्रहस्तने श्रीहनुमान्‌जीसे सारी बातें सत्य-सत्य कहनेके लिये अनुरोध किया, तब आपने बड़ी राजनीतिके साथ उत्तर दिया। मनमें भगवान्‌का स्मरण करके वे कहने लगे—

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः॥
(५।४।८)

'देवादिकोंके शत्रु रावण ! तुम साफ-साफ सुनो—कुत्ता जिस प्रकार विशुद्ध हविको चुरा ले जाता है, उसी प्रकार तुमने अपना नाश करानेके लिये जिन अखिलेश्वरकी साध्वी भार्याको हर लिया है, मैं उन्हीं सर्वान्तर्यामी भगवान् रामका दूत हूँ।' वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रसङ्गका विस्तृत वर्णन है। वहाँ हनुमान्‌जी कहते हैं—

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं .... ॥
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः॥
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया।
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम्॥

ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥
....

राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ।
(सुन्दर० ५० । १३-१७)

'मै इन्द्र, यम, वरुण आदि अन्य किसी देवताका भेजा हुआ नहीं हूँ, न मेरी कुबेरके साथ मित्रता है । मेरी तो यह जाति ही है अर्थात् मैं जन्मसे ही वानर हूँ, राक्षसराज रावणको देखनेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ तथा रावणसे मिलनेके उद्देश्यसे ही मैंने ऐसा यह दुर्लभ बगीचा उजाड़ा है । तुम्हारे बली राक्षस मुझसे लड़नेके लिये गये; तब अपने शरीरकी रक्षाके लिये मैंने उनका मुकाबला किया । देवता या असुर—कोई भी किसी प्रकार मुझे अस्त्रोंके द्वारा बाँध नहीं सकता । राक्षसराजको देखनेके लिये ही मैंने यह बन्धन स्वीकार किया है ।'

इसके बाद संक्षेपमें श्रीरामकी समस्त कथा वर्णन करते हुए, उनकी सुग्रीवके साथ मित्रता होने और बालीके मारे जानेकी सब बातें कहकर यह बतलाया कि 'मैं सीताकी खबर लेनेके लिये आया हूँ ।'

इसके बाद आपने बड़ी युक्तियोंसे रावणको भगवान् श्रीरामके बल, पराक्रम, प्रभाव और ऐश्वर्यकी बातें सुनाकर बहुत कुछ समझानेकी चेष्टा की । रामचरितमानसमें श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—

बिनती करउँ जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥

× × × ×

जाकें डर अति काल डेराई । जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै । मोरे कहें जानकी दीजै ॥
प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि ।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥
राम चरन पंकज उर धरहू । लंकाँ अचल राज तुम्ह करहू ॥

× × × ×

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी । बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥

× × × ×

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ॥

भगवान् श्रीरामका प्रभाव दिखलाकर बहुत कुछ समझानेके बाद अध्यात्मरामायणमें भी यही कहा है—

विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां
भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो
रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥
(५ । ४ । २३)

'रावण ! तुम हृदयमें स्थित शत्रुभावनारूप मूर्खताका त्याग करके शरणागतप्रिय श्रीरामका भजन करो । श्रीसीताजीको आगे करके अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित (भगवान् श्रीरामकी शरणमें जा पड़ो) उन्हें नमस्कार करो । ऐसा करके तुम भयसे मुक्त हो जाओगे ।'

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीने रावणको उसके हितकी बहुत- सी

बातें कहीं, परन्तु उसे वे बहुत ही बुरी लगीं। वह हनुमान्‌जीपर क्रोध करके कहने लगा—'अरे बंदर! तुम निर्भयकी भाँति कैसे मेरे सामने बक रहे हो! तुम बंदरोंमें नीच हो। मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा।' इस प्रकार उसने श्रीहनुमान्‌जीको बहुत-सी खोटी-खरी बातें कहकर राक्षसोंको आदेश दिया कि 'इसे मार डालो।' यह सुनते ही बहुत-से राक्षस श्रीहनुमान्‌जीको मारनेके लिये उद्यत हुए। उस समय विभीषणने रावणको समझाया। रामचरितमानसमें इसका यों वर्णन आता है—

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

यह सुनकर रावणने कहा—

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—

यह सुनकर श्रीहनुमान्‌जीने मन-ही-मन सोचा कि अब काम बन गया। उधर राक्षसोंने रावणकी आज्ञा पाकर तुरंत ही हनुमान्‌जीकी पूँछपर बहुत-से वस्त्र घी और तेलमें भिगो-भिगोकर बाँध दिये, पूँछके अग्रभागमें थोड़ी आग लगा दी और शहरमें फिराकर एवं डोंडी पिटवाकर लोगोंको सुनाने लगे कि 'यह चोर है, इसलिये इसे यह दण्ड दिया गया है।' कुछ दूर जानेपर

हनुमान्‌जीने अपने शरीरको संकुचित कर तुरंत ही समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर पर्वताकार रूप धारण कर लिया और समस्त लङ्का जला डाली।

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम्॥
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः॥
(५।४।४२-४३)

'एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए श्रीहनुमान्‌जीने अपनी जलती हुई बड़ी पूँछसे अटारी, महल और तोरणोंके सहित समस्त लङ्काको जला दिया। उस समय 'हा तात!' 'हा पुत्र!' 'हा नाथ!'—इस प्रकार चिल्लाती हुई दैत्योंकी स्त्रियाँ चारों ओर फैल गयीं और महलोंके शिखरोंपर भी चढ़ गयीं।'

रामचरितमानसमें लिखा है—

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥
× × × ×
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
× × × ×
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥
पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

इस प्रकार श्रीजानकीजीके पास पहुँचकर श्रीहनुमान्‌जीने उन्हें प्रणाम किया और लौटकर श्रीरामके पास जानेके लिये आज्ञा माँगी।

तब माता सीताने कहा कि 'हनुमान्! तुम्हें देखकर मैं अपने दुःखको कुछ भूल गयी थी; अब तुम भी जा रहे हो तो बताओ, अब मैं भगवान् श्रीरामकी कथा सुने बिना कैसे रह सकूँगी ?' अध्यात्म-रामायणमें उस समय श्रीहनुमान्‌जीके वचन इस प्रकार हैं—

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ॥
(५।५।६)

'देवि जानकी! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो मेरे कंधेपर चढ़ जाइये; मैं एक क्षणमें ही आपको श्रीरामसे मिला दूँगा।'

वाल्मीकीय रामायणमें और भी विस्तृत वर्णन है। वहाँ हनुमान्‌जीके इस प्रस्तावपर श्रीजनकनन्दिनी कहती हैं—'हनुमान्! मैं स्वेच्छासे किसी पुरुषको कैसे स्पर्श कर सकती हूँ। श्रीरामजी वानरोंके साथ यहाँ आकर रावणको युद्धमें मारकर मुझे ले जायँ इसीमें उनकी शोभा है। इसलिये तुम जाओ, मैं किसी तरह कुछ दिन प्राण धारण करूँगी।'

इसके बाद रामचरितमानसमें हनुमान्‌जीके वचन इस प्रकार हैं—

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥

तब सीताने अपनी चूडामणि हनुमान्‌को दी, उसे पाकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। उसके बाद सीताने वह सब प्रसङ्ग भी हनुमान्‌जीको सुनाया, जिस प्रकार जयन्तने कौवेका रूप धारण करके चोंच मारी थी और भगवान् श्रीरामने उसपर क्रोध किया था।

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी सीताका सन्देश लेकर, उनको प्रणाम करके वहाँसे लौटे। उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी बड़ी उतावली हो रही थी। इसलिये वे बड़े वेगसे पहाड़पर चढ़ रहे थे। उस समय उनके पैरोंकी धमकसे पर्वतकी शिलाएँ चूर-चूर होती जा रही थीं। सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर श्रीहनुमान्‌जीने अपना शरीर बढ़ाया और समुद्रसे पार होकर उत्तरी किनारेपर जानेका विचार किया। पर्वतसे उछलकर वे वायुकी भाँति आकाशमें जा पहुँचे। वह पर्वत हनुमान्‌जीके पैरोंसे दबाये जानेके कारण बड़ी आवाज करता हुआ अपने ऊपर रहनेवाले वृक्षों और प्राणियोंके सहित जमीनमें धँस गया।

श्रीहनुमान्‌जी आकाशमार्गसे आगे बढ़ते हुए उत्तर-तटके पास पहुँचकर बड़े जोरसे गर्जे, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। उसे सुनकर हनुमान्‌जीसे मिलनेके लिये समस्त वानर उत्साहित हो उठे। जाम्बवान्‌के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई, वे सबसे कहने लगे—'हनुमान्‌जी सब प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। अन्यथा इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती।'

इतनेमें ही अत्यन्त वेगशाली पर्वताकार श्रीहनुमान्‌जी महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर कूद पड़े। उस समय सभी वानर बड़े प्रसन्न हुए और महात्मा हनुमान्‌जीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। हनुमान्‌जीने जाम्बवान् आदि बड़ोंको प्रणाम किया तथा अन्य वानरोंसे प्रेमपूर्वक मिले। संक्षेपमें ही सीताजीसे मिलने और लङ्का जला डालनेका सारा प्रसङ्ग उन लोगोंसे कह सुनाया। वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रसङ्गका भी बड़े विस्तारसे वर्णन हुआ है।

समस्त वानरोंके सहित श्रीहनुमान्‌जी वहाँसे चलकर किष्किन्धा पहुँचे । वहाँ सुग्रीवके मधुवनमें आनन्दपूर्वक सब वानरोंने अङ्गदकी आज्ञा लेकर मधुपान किया । रक्षकोंने आकर वानरराज सुग्रीवके पास इसकी शिकायत की, उस समय लक्ष्मणके पूछनेपर सुग्रीवने कहा—'भाई लक्ष्मण ! इन सब बातोंसे मुझे तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि हनुमान्‌ने ही भगवती सीताका दर्शन किया है । वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌में कार्यसिद्ध करनेकी शक्ति, बुद्धि, उद्योग, पराक्रम और शास्त्रीय ज्ञान—सभी कुछ हैं ।' इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी बहुत-सी ऐसी बातें कहीं, जिनसे श्रीहनुमान्‌जीका प्रभाव स्पष्ट व्यक्त होता है ।

फिर सुग्रीवने तुरंत ही सब वानरोंके साथ हनुमान्‌जीको अपने पास बुला लिया और वे उनका कुशल-समाचार जानकर बड़े प्रसन्न हुए । सब मिलकर श्रीरामजीके पास आये । उस समय श्रीरामचरितमानसमें हनुमान्‌जीके महत्त्वका वर्णन करते हुए जाम्बवान्‌ने कहा है—

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥

इसके बाद श्रीहनुमान्‌जीने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और श्रीरामने हनुमान्‌को हृदयसे लगाया । तब हनुमान्‌जीने कहा—'देवी सीता पातिव्रत्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे कुशल हैं, मै उनके दर्शन कर आया हूँ ।' हनुमान्‌जीके ये अमृतके समान वचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मणको बड़ा हर्ष हुआ । भगवान्‌के मनका भाव जानकर हनुमान्‌जीने उन्हें जिस प्रकार

श्रीजानकीजीके दर्शन हुए थे, वह समस्त प्रसङ्ग सुनाकर उनकी दी हुई चूडामणि भगवान्‌को अर्पण कर दी। उस मणिको लेकर भगवान् श्रीरामने हृदयसे लगा लिया और उसे देख-देखकर विरहमें व्याकुल होने लगे।

रामचरितमानसमें सीताका सन्देश देते हुए हनुमान्‌जीने श्रीसीताजीके प्रेमकी बात इस प्रकार कही है—

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

अन्तमें यहाँतक कह दिया—

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥

अध्यात्मरामायणमें इसका वर्णन इस प्रकार है। सीताके समाचार सुनाते हुए हनुमान्‌जी कहते हैं—

अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः॥
इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम्।
दत्त्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा॥
तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम्।
लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद् दुरुक्तं भाषितं पुरा॥
तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन।
तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः॥

× × ×

ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः।
तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम्॥

उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून् हत्वा क्षणादहम् ।
रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥
लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यागमं क्षणात् ।
(५ । ५ । ५२–५९)

'आते समय मैंने सीतासे कहा कि 'देवि ! मुझे कोई ऐसी निशानी दीजिये, जिससे श्रीरघुनाथजी मेरा विश्वास कर लें ।' मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होंने अपने केशपाशमें स्थित अपनी प्रिय चूडामणि मुझे दी । पहले चित्रकूटपर काकके साथ जो घटना हुई थी, वह सब सुनायी तथा नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि श्रीरघुनाथजीसे मेरी कुशल कहना और लक्ष्मणसे कहना.... 'कुलनन्दन ! मैंने पहले तुमसे जो कुछ कठोर वचन कहे थे, उन अज्ञानवश कहे हुए वचनोंके लिये मुझे क्षमा करना तथा जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी कृपा करके मेरा उद्धार करें, वैसी चेष्टा करना ।' उनका यह सँदेसा लेकर उनका भेजा हुआ मैं आपके पास चला आया । आते समय मैंने रावणकी प्यारी अशोकवाटिका उजाड़ दी तथा एक क्षणमें ही बहुत-से राक्षस मार डाले । रावणके पुत्र अक्षय-कुमारको भी मारा और रावणसे वार्तालाप कर लङ्काको सब ओरसे जलाकर फिर तुरंत ही यहाँ चला आया ।'

श्रीहनुमान्‌जीसे सीताके सब समाचार सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—

हनुमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् ।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥

इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते ।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः ।
(५।५।६०–६२)

'वायुनन्दन हनुमान्! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओं-से भी होना कठिन है। मैं इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ, यह नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ।' यह कहकर रघुश्रेष्ठ श्रीरामने वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को खींचकर गाढ़ आलिङ्गन किया। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रेममें मग्न हो गये।'

श्रीहनुमान्‌जीके बल, पराक्रम, कार्यकौशल, साहस और पवित्र प्रेमका इस प्रकरणमें सभी रामायणोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डमें भी श्रीहनुमान्‌जीके प्रभावका बड़ा सुन्दर वर्णन है; यहाँ उसका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है।

एक दिन भयानक युद्धमें रावणके प्रधान-प्रधान सेनापति मारे गये, राक्षसलोग हताश हो गये। पुत्र और भाइयोंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणको बड़ी चिन्ता हुई। यह देखकर मेघनादको बड़ा क्रोध आया, वह पिताके सामने अपने बल-पौरुषका वर्णन करके उसे धैर्य देकर भयानक युद्ध करनेके लिये युद्धक्षेत्रमें आया। वहाँ पहुँचकर उसने बड़ा घमासान युद्ध किया तथा बहुत-से वानरोंको प्राणहीन कर दिया। उसके ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे श्रीराम और लक्ष्मण भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। बचे

हुए प्रधान-प्रधान रीछ और वानर चिन्तामग्न हो गये। तब विभीषण-ने सबको धैर्य दिया और वे हनुमान्‌को साथ लेकर जहाँ जाम्बवान् पड़ा था, वहाँ गये। वहाँ जाकर विभीषणने जाम्बवान्‌का हाल पूछा, तब जाम्बवान् अपनी पीड़ाका वर्णन करते हुए कहने लगे कि 'मैं तुम्हें केवल आवाजसे ही पहचान सका हूँ, देखनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम सबसे पहले मुझे यह बताओ कि वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के प्राण बचे हैं या नहीं।' इसपर विभीषणने कहा—ऋक्षराज! आपने श्रीराम और लक्ष्मणको छोड़कर पहले केवल हनुमान्‌जीकी कुशल कैसे पूछी? राजा सुग्रीव, अङ्गद तथा श्रीराम और लक्ष्मणपर भी आपने उतना स्नेह प्रकट नहीं किया जितना गाढ़ प्रेम आपका पवनकुमारके प्रति लक्षित हो रहा है। इसका क्या कारण है?'

तब जाम्बवान् बोले—

शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम्॥
अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम्॥
(युद्ध० ७४। २१-२२)

'राक्षसराज! सुनो, मै हनुमान्‌के लिये इसलिये पूछ रहा हूँ कि यदि इस समय वीरवर हनुमान् जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जी सकती है और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हम जीते हुए भी मृतकतुल्य ही हैं।'

इसके बाद श्रीहनुमान्‌जीने उनको प्रणाम किया। हनुमान्‌की आवाज सुनकर जाम्बवान्‌में नया जीवन आ गया। उन्होंने

हनुमान्‌को संजीवनी ओषधिके लक्षण बताकर हिमालय भेजा। उनके आज्ञानुसार हनुमान्‌जीने वहाँ जाकर ओषधिकी खोज की, पर ओषधि लुप्त हो जानेके कारण मिली नहीं। तब आप उस पर्वतको ही उखाड़कर ले आये और समस्त वानर-सेनाको पुनः प्राण-दान दिया तथा श्रीराम और लक्ष्मण भी स्वस्थ हो गये। इत्यादि।

जब रावणद्वारा छोड़ी हुई अमोघ शक्ति श्रीलक्ष्मणजीने विभीषण-जीकी रक्षाके लिये अपने ऊपर ले ली और मानुषी लीला करनेके लिये आप मूर्च्छित हो गये, तब रावण श्रीलक्ष्मणके पास जाकर उन्हें उठाने लगा; परन्तु समस्त जगत्‌के आधारभूत श्रीलक्ष्मणको वह कैसे उठा सकता था।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—



ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥
(६।६।१२-१३)

'उस समय हनुमान्‌जीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको उठाकर ले जाना चाहता है तो वे कुपित हो गये और अपनी वज्रतुल्य मुट्ठीसे उसकी छातीपर प्रहार किया। उस मुष्टिप्रहारसे रावण घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ा।' इधर हनुमान्‌जी लक्ष्मणको उठाकर भगवान् श्रीरामके पास ले गये।

इस समय भी श्रीहनुमान्‌जी द्रोणपर्वतपर ओषधि लानेके लिये गये और उसी तरह पर्वतको उखाड़ लाये थे। इस प्रसङ्गका वर्णन करते हुए सभी रामायणोंमें श्रीहनुमान्‌जीका अद्भुत, बल, पौरुष, बुद्धिकौशल और प्रभाव दिखाया गया है।

रामचरितमानसमें मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजीके मूर्च्छित होनेकी बात आती है। वहाँ हनुमान्जी ही जाम्बवान्के कहनेसे पहले घरसहित सुषेणको उठाकर लाये हैं, फिर सुषेणके कहनेसे संजीवनी लाने गये हैं और पर्वतको उखाड़ लाये हैं। श्रीहनुमान्जी-का सेवाभाव बड़ा ही विचित्र था। इनकी सेवाके कारण भगवान् श्रीरामने अपनेको ऋणी माना। माता सीताने भी वही बात कही। लक्ष्मण और समस्त वानरोंके प्राण बचे। इसी प्रकार विरह-व्याकुल भरतको श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी सूचना देकर उनके प्राण बचानेका काम भी श्रीहनुमान्जीने ही किया।

रामचरितमानसका वर्णन है—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

वहाँ श्रीहनुमान्जी भरतकी प्रेम-दशा देखकर कहते हैं—

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

इस प्रकार श्रीरामके आनेका कुशल-समाचार सुनते ही श्री-भरतजीमें नये जीवनका सञ्चार हो आया। उनके पूछनेपर अपना परिचय देते हुए हनुमान्जी कहते हैं—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपा निधाना॥
दीन बंधु रघुपति कर किंकर। × × ×

कितना विनयभाव है! यह बात सुनते ही भरतजी उठकर बड़े हर्ष और आदरके साथ उनसे मिले। अपने आनन्दका वर्णन करते हुए अन्तमें यहाँतक कह दिया—

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीने सबकी सेवा की, जिसके कारण सभीने अपनेको उनका ऋणी माना। भगवान् श्रीरामके राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हो जानेके बाद भी आप सदा उनकी सेवामें ही रहे। अन्य सब वानर और राक्षस अपने-अपने घर लौट गये, पर श्रीहनुमान्‌जी नहीं गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जब अश्वमेध यज्ञ किया था, उस समय श्रीहनुमान्‌जी भी घोड़ेकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नके साथ गये थे।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें रामाश्वमेधयज्ञकी कथाका विस्तृत वर्णन है। वहाँ भी श्रीहनुमान्‌जीके महत्त्वका बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। जब श्रीरामाश्वमेधका घोड़ा अनेक देशोंमें भ्रमण करता हुआ राजा सुबाहुकी राजधानी चक्राङ्का नगरीके पास पहुँचा, तब राजाके पुत्र दमनने उस घोड़ेको पकड़ लिया। उस राजाके और भी कई पुत्र और भाई बड़े शूरवीर थे तथा वह स्वयं भी बड़ा ही वीर योद्धा था। वहाँ दोनों ओरसे बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें राजा सुबाहुके साथ श्रीहनुमान्‌जीका भयानक युद्ध हुआ। उसमें कपिवर हनुमान्‌जीने बार-बार राजाको व्यथित किया, उसके रथको घोड़ोंसहित चूर्ण कर डाला और बड़े जोरसे राजाकी छातीमें एक लात मारी। उसके लगते ही राजा सुबाहु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीहनुमान्‌जीके पदाघातसे उसका मोह नष्ट हो गया। उसके मनमें श्रीरामकी भक्ति प्रकट हो गयी। वह स्वप्नमें देखता है—

रामचन्द्रस्त्वयोध्यायां सरयूतीरमण्डपे।
ब्राह्मणैर्याज्ञिकश्रेष्ठैर्बहुभिः परिचारितः॥

तत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र ब्रह्माण्डकोटयः ।
कृतप्राञ्जलयस्तं वै स्तुवन्ति स्तुतिभिर्मुहुः ॥
(२८ । ४९-५०)

अयोध्यापुरीमें सरयू नदीके तीरपर श्रीरामचन्द्रजी यज्ञमण्डप-के भीतर विराजमान हैं। यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ अनेकों ब्राह्मण उन्हें घेरकर बैठे हुए हैं। करोड़ों ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मादि देवता हाथ जोड़े खड़े हैं और बारंबार श्रीरामकी स्तुति कर रहे हैं'—इत्यादि।

इस प्रकारका अद्भुत स्वप्न देखते ही राजाको श्रीराम-तत्त्वका ज्ञान हो गया। वह तुरंत ही मूर्च्छासे उठा और शत्रुघ्नके चरणोंकी ओर पैदल ही चल पड़ा। युद्ध बंद करनेकी घोषणा करते हुए उसने अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसे कहा—

एष रामः परं ब्रह्म कार्यकारणतः परम् ।
चराचरजगत्स्वामी न मानुषवपुर्धरः ॥
एतद्धि ब्रह्मविज्ञानमधुना ज्ञातवानहम् ।
(२८ । ५९-६०)

'ये श्रीरामचन्द्रजी कार्य और कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं। ये चराचर जगत्के स्वामी हैं। मानव-शरीर धारण करनेपर भी ये वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इनको इस रूपमें जान लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इस तत्त्वको मैं अब समझ पाया हूँ।' इतना कहकर उसने अपने पुत्रोंसे असिताङ्ग मुनिके द्वारा अपनेको शाप प्राप्त होनेकी सब कथा कह सुनायी और घोड़ेको लेकर अपने बन्धु-

बान्धवोंके सहित शत्रुघ्नजीकी शरणमें जा पड़ा। वहाँ उसने कृतज्ञता प्रकट करते हुए श्रीहनुमान्‌जीके विषयमें कहा है—

कासौ हनूमान् रामस्य चरणाम्भोजषट्पदः।
यत्प्रसादादहं प्राप्स्ये राजराजस्य दर्शनम्॥
साधूनां सङ्गमे किं किं प्राप्यते न महीतले।
यत्प्रसादादहं मूढो ब्रह्मशापमतीतरम्॥

(२९। ३२-३३)

श्रीरामके चरण-कमलोंके मधुकर वे हनुमान् कहाँ हैं, उन्हींकी कृपासे मैं राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगा। साधुसङ्ग मिल जानेपर इस पृथ्वीपर मनुष्यको क्या-क्या नहीं मिल जाता। मैं महामूढ था, किन्तु सत्सङ्गके प्रभावसे आज घोर ब्रह्मशापसे मेरा उद्धार हो गया।'

उसके बाद अनेक देशोंको विजय करते-करते जब यज्ञका घोड़ा राजा सत्यवान्‌के नगरसे आगे जा रहा था, उस समय विद्युन्माली नामके राक्षसने रास्तेमें उस घोड़ेको चुरा लिया और अपने सैनिक राक्षसोंके सहित विमानमें बैठकर आकाशमें जाकर प्रकट हुआ। वहाँ उस राक्षसके साथ शत्रुघ्नकी सेनाका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। उस समय श्रीहनुमान्‌जीने उस राक्षसके साथ युद्धमें अपना पराक्रम दिखलानेकी जो प्रतिज्ञा की है, उससे इस बातका पता लगता है कि श्रीहनुमान्‌जी भगवान् रामपर कितना भरोसा रखते थे। वे भगवान् श्रीरामकी कृपाके भरोसेपर अपनी अद्भुत शक्ति मानते थे। उन्होंने पहले जैसी प्रतिज्ञा की, उसी प्रकार युद्धमें भी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया। वे आकाशमें

जाकर विमानपर शत्रुपक्षके महान् दैत्योंको नखोंसे विदीर्ण करके मौतके घाट उतारने लगे। किन्हींको पूँछसे मार डाला, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला और किन्हींको हाथोंसे चीर डाला। जब क्रोधमें भरकर राक्षसराज विद्युन्मालीने अत्यन्त तेजस्वी भयानक त्रिशूलका प्रहार किया, तब उसे हनुमान्‌जीने अपने मुँहमें पकड़ लिया और दाँतोंसे चबाकर चूर-चूर कर डाला तथा उस दैत्यराजको थप्पड़ोंकी मारसे व्याकुल कर दिया। इसके बाद श्रीशत्रुघ्नजीने विद्युन्माली और वज्रदंष्ट्रको मार गिराया। बचे-खुचे राक्षस उनकी शरणमें आ गये।

वहाँसे जाकर वे आरण्यक मुनिसे मिले। इसके बाद वह घोड़ा देवपुरके पास पहुँचा, वहाँ राजा वीरमणि और उसके पुत्रोंसे शत्रुघ्नकी सेनाका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। राजा वीरमणि भगवान् शङ्करका परम भक्त था। अतः वहाँ उसकी सहायताके लिये स्वयं भगवान् शङ्कर भी अपने गणोंके सहित रणक्षेत्रमें युद्ध करनेके लिये पधारे थे। उस भयानक युद्धमें जब राजकुमार पुष्कल मारे गये और शत्रुघ्न भी मूर्छित हो गये, उस समय श्रीहनुमान्‌जीने अद्भुत पराक्रम दिखाया। साक्षात् भगवान् शङ्करके साथ उन्होंने घोर युद्ध किया तथा सारथि और घोड़ोंके सहित शिवजीके रथको चूर-चूर कर डाला। जब भगवान् शिवजी नन्दीपर सवार होकर युद्ध करने लगे, तब श्रीहनुमान्‌जीने शालवृक्षका प्रहार करके शिवजीको व्याकुल कर दिया। अब भगवान् शङ्करने उनपर अपना त्रिशूल चलाया। हनुमान्‌जीने उसे पकड़ लिया और क्षणभरमें तोड़कर तिल-तिल कर डाला। नाना प्रकारके प्रहारोंसे शिवजीको व्यथित

करके अन्तमें भूतनाथ भगवान् शिवको अपनी पूँछमें लपेट लिया। यह देखकर नन्दी भयभीत हो गये। इस प्रकार जब हनुमान्‌जीने शिवजीको अत्यन्त व्याकुल कर दिया, तब हनुमान्‌जीके युद्धसे प्रसन्न होकर शङ्कर कहने लगे—'श्रीरघुनाथजीके सेवक हनुमान्! तुम धन्य हो। आज तुमने महान् पराक्रम कर दिखाया। इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ। अतः तुम मुझसे वर माँगो।'

इसपर हनुमान्‌जीने हँसकर निर्भय वाणीसे कहा—'महेश्वर! रघुनाथजीकी कृपासे मुझे सब कुछ प्राप्त है; तथापि आपकी प्रसन्नताके लिये मैं यही वर माँगता हूँ कि जबतक मैं द्रोण-पर्वतपर जाकर औषध ले आऊँ; तबतक आप अपने गणोंसहित हमारे पक्षके मरे हुए वीरोंके शरीरोंकी रक्षा करते रहें। उन्हें कोई खण्ड-खण्ड न करने पाये।' शिवजीने उनकी माँग स्वीकार कर ली। उसके बाद हनुमान्‌जी जिस प्रकार लङ्कापुरीमें संजीवनी बूटी लाये थे, उसी प्रकार तुरंत ही संजीवनी बूटी ले आये। पहले राजकुमार पुष्कलको जिलाया, उसके बाद शत्रुघ्नकी मूर्च्छा दूर की और समस्त वीरोंको जीवन-दान दिया। इस प्रकार उस भयानक युद्धमें श्री-हनुमान्‌जीके ही पराक्रमसे सबके प्राण बचे। अन्तमें वहाँ भगवान् श्रीराम स्वयं पधारे। भगवान् शिवजीने राजा वीरमणिको समझाकर श्रीरामका भक्त बना दिया।

इसके बाद वह घोड़ा अनेक देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ राजा सुरथसे रक्षित कुण्डलनगरके पास पहुँचा। राजा सुरथ भगवान् रामका परम भक्त था। उसने भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ उनके घोड़ेको पकड़ लिया। वहाँपर राजा सुरथके साथ शत्रुघ्नका

बड़ा ही भयङ्कर युद्ध हुआ। उस युद्धमें जब राजा सुरथका पुत्र चम्पक राजकुमार पुष्कलको बाँधकर अपने नगरमें ले जाने लगा, उस समय शत्रुघ्नकी प्रेरणासे श्रीहनुमान्‌जी वहाँ गये। जाते ही उन्होंने रथसे चम्पकको उठा लिया और वे उसे लेकर आकाशमें चले गये। वह आकाशमें ही हनुमान्‌जीसे बाहुयुद्ध करने लगा। राजकुमार चम्पकका अद्भुत पराक्रम देखकर हँसते-हँसते हनुमान्‌जी-ने उसका पैर पकड़ लिया और उसे सौ बार घुमाकर हाथीके हौदेपर दे मारा। राजकुमार गिरते ही मूर्च्छित हो गया।

अपने पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख राजा सुरथ स्वयं हनुमान्‌जी-से युद्ध करनेके लिये आये। उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीके बल और पराक्रमकी तथा रामभक्तिकी सच्चे हृदयसे प्रशंसा की और साथ ही यह प्रतिज्ञा भी की कि 'मैं तुम्हें बाँधकर अपने नगरमें ले जाऊँगा।' उसकी बातका उत्तर देते हुए श्रीहनुमान्‌जीने कहा कि 'राजन्! आप श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हैं और मैं भी उन्हींका सेवक हूँ। यदि आप मुझे बाँध लेंगे तो मेरे स्वामी मुझे बलपूर्वक छुड़ा लेंगे। वीर! तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। जो श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं होता।'

इस प्रकार बातचीत होनेके बाद राजा सुरथके साथ हनुमान्‌जीका भयङ्कर युद्ध हुआ। हनुमान्‌जीने उसे युद्धमें राजा सुरथके एक-एक करके उन्चास रथ तोड़ डाले। राजाकी समस्त सेना व्याकुल हो गयी और स्वयं राजाको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने श्रीहनुमान्‌जीके बलकी भूरि भूरि-प्रशंसा की। राजाने पाशुपतास्त्रसे हनुमान्‌जीको बाँधनेकी चेष्टा की। एक बार लोगोंने

समझा कि हनुमान् बँध गये। परन्तु श्रीहनुमान्‌जीने अपने मनमें भगवान् श्रीरामका स्मरण करके क्षणमात्रमें उस अस्त्रके बन्धनको तोड़ डाला। राजाने ब्रह्मास्त्र चलाया तो उसे भी श्रीहनुमान्‌जी निगल गये। अन्तमें राजाने भगवान् रामका स्मरण करके श्रीरामास्त्र-को अपने धनुषपर चढ़ाया और उसका प्रयोग करके हनुमान्‌जीसे कहा कि 'कपिश्रेष्ठ! अब तुम बँध गये।' हनुमान्‌जीने कहा—'राजन्! तुमने मुझे मेरे स्वामी श्रीरामके ही अस्त्रसे बाँधा है, दूसरे किसी प्राकृत अस्त्रसे नहीं। इसलिये मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगरमें ले जा सकते हो।'

राजा सुरथके साथ जो हनुमान्‌जीकी बातें हुईं, उनमें अद्भुत प्रेम भरा है। श्रीहनुमान्‌जीको भला कौन बाँध सकता है। वे तो स्वयं अपनी इच्छासे ही भगवान्‌के परम भक्त सुरथकी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने स्वामीके अस्त्रका सम्मान रखनेके लिये बँध गये।

इसके बाद वहाँ श्रीहनुमान्‌जीके बुलानेपर स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पधारे और उन्होंने राजा सुरथको दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया। इस प्रकार पद्मपुराणके पातालखण्डमें श्रीहनुमान्‌जीके महत्त्वका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। यहाँ वह बहुत ही संक्षेपमें लिखा गया है।

परम धाम पधारते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कपिवर श्री-हनुमान्‌जीको जगत्‌का कल्याण करनेके लिये यहीं रहनेकी आज्ञा दे गये। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीराम परम धाम पधारते समय हनुमान्‌जीसे कहते हैं—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्॥
(उत्तर० १०८ । ३०)

'वानरश्रेष्ठ! संसारमें जबतक मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।' महात्मा रामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कहा—

यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्॥
(उत्तर० १०८ । ३२)

'प्रभो! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा।'

द्वापरयुगमें श्रीहनुमान्‌जीने भीमसेन और अर्जुनको भी दर्शन दिये थे। कलियुगमें भी आपके प्रकट होनेकी कई कथाएँ मिलती हैं। आपके गुण, प्रभाव और माहात्म्यका बड़ा विस्तार है। यहाँ बहुत ही संक्षेपमें उसका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। इस लेखसे श्रीहनुमान्‌जीके अतुलित गुणोंका चिन्तन करके लाभ उठाना चाहिये। उन्हें आदर्श बनाकर अखण्ड ब्रह्मचर्य, अटल भगवद्भक्ति, वीरता, धीरता, बल-पौरुष, विद्या, साहस और बुद्धिमानी आदि गुण धारण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

